बालसखा पुस्तकमाला—पुस्तक-तेईसवीं।

बाल-भोजप्रबन्ध

अर्थात्

भोजप्रबन्ध का हिन्दी में सरल सार

लेखक

पण्डित सुन्दरलाल शर्मा द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२७

संशोधित संस्करण] [मूल्य ।।=)

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

सूची

विषय			पृष्ठ

भूमिका

संस्कृत में 'भोजप्रबन्ध' नामक एक पुस्तक है। इस पुस्तक का संस्कृतज्ञ अच्छा आदर करते हैं। इसमें राजा भोज का जन्म से लेकर अन्त तक का वृत्तान्त है। यह राजा संस्कृत विद्या का जैसा आदर करनेवाला हुआ है वैसा कोई दूसरा मनुष्य आज तक नहीं हुआ। इसने अपने राज्य में यहाँ तक आज्ञा दे दी थी कि जो संस्कृतज्ञ है वह, चाहे जिस जाति का हो, मेरे राज्य में आनन्दपूर्वक रहे और जो संस्कृत से अनभिज्ञ है—जो संस्कृत नहीं बोल सकता—वह चाहे मेरे कुटुम्ब का ही हो तो भी मेरे राज्य में नहीं रह सकता। ऐसे विद्याव्यसनी मनुष्य का कुछ हाल हिन्दी-पाठकों को भी मालूम हो सके इसी अभिप्राय से मैंने इस पुस्तक को लिखा है।

भोजप्रबन्ध बड़ी पुस्तक है। उसमें संस्कृत विद्या के चुटकुले अधिक हैं। वे चुटकुले संस्कृतज्ञों के लिए अधिक लाभदायक हैं। कहीं-कहीं हमने कुछ श्लोक भी लिख दिये

हैं। हिन्दी पाठकों के लिए हमने इसमें से उपयोगी बातें लिखकर इस पुस्तक को समाप्त किया है। पूरे भोजप्रबन्ध का यह अनुवाद नहीं है। शृङ्गार-विषय को तो हमने बिलकुल ही छोड़ दिया है।

इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों को बहुत सी उपयोगी बातें मालूम होंगी।

१९११। सुन्दरलाल शर्मा, द्विवेदी।

बाल-भोजप्रबन्ध

पहला परिच्छेद

राजा भोज का परिचय

प्राचीन समय में इस आर्यावर्त्त देश में बड़े-बड़े प्रतापी, तेजस्वी, धर्मधुरन्धर और अत्यन्त पराक्रमी अनेक राजा हो गये हैं। सूर्यवंश और चन्द्रवंश इन दोनों ही वंशों के राजा बड़े बुद्धिमान् और परोपकारी थे। 'जो चढ़ता है वही गिरा करता है' इस उक्ति के अनुसार पीछे से ऐसा समय आ गय कि इस देश की अत्यन्त हीन अवस्था हो गई। सब कला-

कौशल और सब विद्याएँ नष्ट हो गईं। लोगों ने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया और आपस में रात-दिन लड़ाई-झगड़ा करना अपना कर्त्तव्य समझ लिया।

जैसा राजा होता है प्रजा भी वैसी ही हो जाती है। जब राजा ही मूर्ख होने लगे तब प्रजा का तो कहना ही क्या था। राजाओं ने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया, प्रजा ने उनसे भी पहले विद्या से अपने हाथ धो लिये। मतलब यह कि जिस राजा भोज का चरित हम लिखते हैं उसके समय से कुछ पूर्व इस देश की बुरी हालत हो गई थी। लोगों ने अपना धर्म-कर्म सब त्याग दिया था।

बारहवीं शताब्दी में राजा भोज हुआ। वह स्वयं बड़ा विद्वान् था। उसने जब देखा कि इस देश में मूर्खता छाई हुई है, मनुष्यों में मनुष्यत्व कुछ भी नहीं पाया जाता, तब उसने विद्या का प्रचार बढ़ाने के लिए बड़े-बड़े उपाय किये। उसने पढ़े-लिखे मनुष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा की। वह विद्या की उन्नति इतनी चाहता था कि विद्या के सामने वह अपने न्यायोपार्जित धन की कुछ भी पर्वा न करता था। एक-एक श्लोक बनानेवाले को उसने लाखों रुपया देते हुए कुछ भी सङ्कोच न किया। वह श्लोक बनानेवालों का बड़ा ही आदर करता था। वह चाहता था कि जैसे हो विद्या की उन्नति हो।

जहाँ कहीं विद्वान् मिले, उन्हें राजा भोज ने अपने पास बुलवाया। जब कोई आकर उससे कहता था कि अमुक स्थान

का पण्डित बड़ा विद्वान् है तब वह तत्काल ही उसको अपने पास बुलाने का उपाय किया करता था। उसने अपनी सभा में देश-देशान्तर के विद्वान् बुलाकर रक्खे। उसने अपने राजनियमों में एक ऐसा नियम बना दिया था कि "मेरी राजधानी धारा नगरी में एक भी मूर्ख न रहने पावे। चाहे लड़का हो चाहे जवान, चाहे बूढ़ा हो चाहे स्त्री या लड़की; कोई भी हो, हर एक मनुष्य को विद्या पढ़नी चाहिए। बिना विद्या के हमारे राज्य में कोई भी न रह सकेगा।"

जहाँ राजा का इस तरह का क़ानून हो उस देश के सौभाग्य का कहना ही क्या है! जिस देश को सुधारने के लिए स्वयं राजा ही इस तरह का उद्योग करे उस देश के सुधरने में कमी क्या रह सकती है! उस समय प्रायः सभी मनुष्य मूर्ख थे। कोई अपना काम चलाने के योग्य मामूली पढ़े-लिखे थे और कोई-कोई अक्षरमात्र जानते थे। राजा भोज को जब अच्छी तरह मालूम हो गया कि हमारी प्रजा बिलकुल मूर्ख है, कोई भी पढ़ा-लिखा नहीं है तब उसने विद्या के पढ़ने का सबको उपदेश दिया। उसने आज्ञा दे दी कि मनुष्यमात्र को विद्या पढ़नी चाहिए।

यही नहीं कि राजा भोज ने क़ानून बना दिया हो—केवल यह आज्ञा ही दी हो कि सबको विद्या पढ़नी चाहिए, किन्तु उसने अपने रुपये से सैकड़ों विद्यालय बनवाये। उनमें देश-देशान्तर से ढूँढ़-ढूँढ़कर अच्छे-अच्छे विद्वान् अध्यापक

रक्खे। पढ़ने में जो असमर्थ थे—अपना कारोबार छोड़कर जो पढ़ नहीं सकते थे—उनको अपने रुपये से सहायता देकर पढ़वाया।

उस समय राजा भोज विद्या में सबसे बढ़कर माना जाता था। उसकी विद्वत्ता जगद्विख्यात थी। उसकी धारा नगरी राजा इन्द्र की अमरावती की तरह विबुध जनों से अलंकृत और देदीप्यमान हो रही थी। सारे देश और रजवाड़ों में उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। मनुष्य समझते थे कि धारा नगरी विद्या का भण्डार है। इसी लिए देश-देशान्तर के विद्वान् वहाँ आते और अपनी विद्या का लाभ प्राप्त करते थे।

दूसरा परिच्छेद

राजा भोज का जन्म और राजा सिन्धुल का वैराग्य

महाराजा विक्रमादित्य परमार के वंश में सिन्धुल नामक एक राजा हुआ। यह उज्जयिनी नगरी में राज्य करता था। उसका ध्यान प्रजा को सुखी रखने का सदा रहता था। उसकी यह इच्छा रहती थी कि हमारी प्रजा को किसी तरह का दुख न हो। इसी लिए उसकी प्रजा बड़े सुख में रहती थी और राजा से सदा बड़ी प्रसन्न रहती थी। प्रजा सदा उसके अभ्युदय को चाहती थी। प्रजा के सन्तुष्ट रहने से वह भी बड़ा सुखी रहता था। उसको किसी प्रकार का दुख न था। प्रजा की ओर से वह सदा निर्भय रहता था। अगर उसको कोई दुख था तो वह केवल पुत्र के न होने का था। पर यह दुख कुछ मामूली न था किन्तु बहुत बड़ा था। उसे रात-दिन यही चिन्ता रहा करती थी कि क्या करूँ, जिससे पुत्र का दर्शन हो। क्योंकि 'बिना पुत्र के मनुष्य की गति नहीं होती'। होते-होते उसको

वृद्धावस्था ने भी आकर घेर लिया। बुढ़ापे में तो और भी अधिक पुत्र की इच्छा हुआ करती है। मतलब यह कि उसको बुढ़ापे तक पुत्र के न होने का दुख रात-दिन पीड़ित करता रहा।

सच है, मनुष्य के करने-धरने से कुछ नहीं होता। जो प्रारब्ध में है वही समय पाकर मिलता है। यह भी ठीक है कि केवल भाग्य के भरोसे पर ही मनुष्य को नहीं रहना चाहिए किन्तु उपाय भी करना चाहिए। उपाय करने पर भाग्य भी अपना ज़ोर लगाता है। यदि उपाय नहीं किया जाता तो भाग्य भी किसी-किसी अवसर पर दबा रहता है। मतलब यह कि सिन्धुल राजा पुत्रप्राप्ति की चिन्ता में सदा रहता ही था। अन्त में राजा के भाग्य ने पलटा खाया! बुढ़ापे में उसे पुत्र-लाभ का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पुत्र-जन्म सुनकर राजा को उस समय जो सुख मिला होगा वह लिखने में नहीं आ सकता। जिसकी चिन्ता में सारी उम्र बीत जावे, तिस पर भी लड़के के लिए, और बुढ़ापे में उसकी प्राप्ति हो तो इस सुख का अनुभव उसी को हो सकता है, जिसको कि यह सुख मिला करता है। अभिप्राय यह कि पुत्र का जन्म सुनकर राजा को अभूतपूर्व सुख मिला।

राजपुत्र का जन्म सुनकर प्रजा को भी बड़ा सुख हुआ। प्रजा ने जहाँ-तहाँ बड़े-बड़े उत्सव किये। राजा के अच्छे बर्त्ताव से प्रजा सन्तुष्ट तो थी ही। फिर भला उसको राज-

कुमार का जन्म सुनकर अत्यन्त आनन्द क्यों न होता! उसने उसी तरह आनन्द मनाया जिस तरह राजघराने में मनाया गया था।

राजा ने पुत्रजन्म की ख़ुशी में बड़े-बड़े दान-पुण्य किये। जो कोई उस समय दरवाज़े पर आया उसी को यथेच्छ धन आदि पदार्थ देकर सन्तुष्ट किया। जो जिसके योग्य था उसको वही चीज़ें दी गईं। वे लोग बड़े सुखी हुए और बड़े आनन्द के साथ पुत्र को आशीर्वाद देते हुए उसकी दीर्घायु के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करने लगे। सबने यही चाहा कि राजकुमार की बड़ी उम्र हो। यह ऐश्वर्यशाली हो और संसार में बहुत दिन तक जीकर राजकार्य करे।

पुत्र-जन्म होने पर एक-दो दिन के बाद राजा ने अपने राज्य के ज्योतिषियों को बुलवाकर कहा कि आप लोग मेरे पुत्र का जन्मपत्र तैयार कीजिए। उन्होंने आज्ञा पाकर पुत्र की जन्मलग्न देखी और गणित लगाकर जन्मपत्र बनाकर तैयार कर दिया। जब जन्मपत्र तैयार हो चुका तब राजा से ज्योतिषियों ने कहा कि राजन्! गणित से हमको मालूम हुआ है कि राजकुमार की उम्र अधिक होगी। जब यह बड़ा होगा तब महायशस्वी होगा। इसकी संसार में बड़ी प्रतिष्ठा होगी। इसके राज्य में कोई भी मनुष्य बिना पढ़ा-लिखा न रहेगा, सब लोग पढ़ने-लिखने का उद्योग करेंगे। इसकी प्रजा भी बड़ी बुद्धिमती होगी। इसके राज्य में विद्या का और

कला-कौशल का ख़ूब प्रचार होगा। सब लोग विद्वान् और दस्तकारी जाननेवाले होंगे। यह चक्रवर्ती राजा होगा। लोग इसको महाराज कहेंगे और यह बड़े सुख से राज्य करेगा।

ये सब बातें होते हुए भी गणित से मालूम होता है कि बालकपन में एक दुख इसको भोगना पड़ेगा। वह दुख बहुत बड़ा न होगा। वह ज़ाहिरा तो बड़ा दुख मालूम होगा पर उसका परिणाम बुरा न होगा। उस दुख को भोगने में बहुत दिन न लगेंगे। थोड़े ही दिनों में उस दुख के बाद यह सुख से रहेगा और अच्छी तरह राज-कार्य करेगा। मनुष्य को सुख-दुख कर्मानुसार हुआ करता है, इसलिए इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है? आप इसका विशेष दुख न मानें। जब कि दुख-सुख का होना कर्मानुसार है तब उसको मेट ही कौन सकता है? इसलिए आपको किसी प्रकार का रञ्ज नहीं करना चाहिए। राशि के अनुसार इसका नाम भकारादि होता है। हमारी राय में आप इसका नाम **भोज** रक्खें तो अच्छा हो।

यह सब जन्मपत्र का हाल कहकर ज्योतिषी लोग चुप हो गये। अन्त में राजकुमार का नाम भोज ही रक्खा गया।

राजा सिन्धुल समझदार था। उसने विचार किया कि जो होनहार है वह अवश्य होता है। भावी को कोई टाल नहीं सकता। ऐसा कोई भी उपाय नहीं है जो भावी को दूर कर सके। इसलिए राजा ने मन में धैर्य धारण किया।

सब ज्योतिषियों को उनकी योग्यता के अनुसार दक्षिणा दे बिदा किया।

राजकुमार भोज के दुख का हाल ज्योतिषियों ने जो राजा को बतलाया था उसकी उसे रात-दिन फ़िक्र रहती ही थी। ईश्वर की कृपा से धीरे-धीरे भोज को पाँच वर्ष बीत गये। उसको किसी तरह का दुख न हुआ। जब राजा ने देखा कि अब तो राजकुमार ५ वर्ष का हो गया और इसको किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं हुई तब उसके मन को कुछ-कुछ सन्तोष हुआ। अब धीरे-धीरे राजा को बुढापा घेरता गया। उम्र अधिक हो ही गई थी और चिन्ता भी अधिक करनी पड़ी। इसलिए राजा के मन में विचार पैदा हुआ कि सांसारिक कार्यों को छोड़कर कुछ दिन परमात्मा का भी भजन करना चाहिए। परमात्मा का भजन किये बिना मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता। इस तरह उसे संसार की ओर से बिलकुल उदासीनता हो गई। धीरे-धीरे सांसारिक कार्यों को छोड़ देने का उसने पक्का विचार कर लिया।

पुराने ज़माने में हमारे आर्यावर्त्त देश की चाल थी कि क्या राजा क्या रङ्क सभी, वृद्धावस्था आते ही, अपने-अपने घर का कारोबार छोड़कर वन को चले जाते थे। वे वहाँ जाकर ईश्वर का भजन करते और घर का सब प्रबन्ध पुत्र किया करते थे। तदनुसार राजा सिन्धुल ने, वृद्धावस्था होने पर, वन में जाकर परमेश्वर का भजन करने का विचार किया।

तीसरा परिच्छेद

मुञ्ज को राजगद्दी

अब राजा सिन्धुल ने अपने मन मे पूरा वैराग्य कर लिया; उन्होंने राज्य-भार दूसरे मनुष्य को देना सर्वथा निश्चित कर लिया। राजा सिन्धुल के एक भाई भी था। उसका नाम मुञ्ज था। जब राजा ने वन में जाकर तपस्या करने का पक्का विचार कर लिया तब अपने मुख्य-मुख्य मन्त्रियों को बुलवाया। उसने मन्त्रियों से कहा कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, अब मेरे ऊपर राज्य-भार न रहे तो अच्छा है। मेरी इच्छा है कि मैं वन मे रहकर कुछ दिन तप करूँ, जिससे मेरा परलोक सुधरे। आप लोग बतलाइए कि अब मैं क्या करूँ? राज-काज कौन सँभाल सकता है? मेरा छोटा भाई मुञ्ज बड़ा बली है और मेरा लड़का भोज निपट बालक है। भाई मुञ्ज राज-काज सँभालने के योग्य है। उसमें इतनी शक्ति है कि वह राज्य को चला सके। यदि मैं मुञ्ज को राज्य न देकर अपने लड़के को राजा बनाऊँ

तो एक तो यह डर है कि संसार में लोग निन्दा करेंगे कि राजा ने भाई को, समर्थ होते हुए, छोड़कर असमर्थ लड़के को राजा बनाया। दूसरा यह भी डर है कि मुञ्ज राज्य के लोभ से ज़हर देकर कहीं लड़के को मरवा न डाले। यदि दैवगति से ऐसा हो गया, यह अनर्थ मुञ्ज से बन पड़ा तो इस राज्य का भोज को देना व्यर्थ होगा और वंश का नाश भी हो जावेगा। क्योंकि नीतिकारों ने कहा है—

"लोभ पाप की जड़ है। लोभ से ही पाप की उत्पत्ति होती है। लोभ ही वैर और क्रोध आदि अवगुणों को पैदा करने का मूल कारण है।

"लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से द्रोह—ईर्ष्या—बढ़ता है। द्रोह करने से शास्त्र का जाननेवाला पण्डित भी नरक पाता है।

"जब मनुष्य को लोभ घेर लेता है तब वह आगा-पीछा कुछ भी नहीं देखता। उसको धर्म-कर्म का कुछ भी ख़याल नहीं रहता; वह तो माता, पिता, पुत्र, भाई, मित्र, स्वामी और सहोदर भाई तक को मारने के लिए तैयार हो जाता है, और कभी-कभी मार भी डालता है।"

यह सब विचारते हुए मैं उचित समझता हूँ, और यही ठीक मालूम होता है कि मैं 'मुञ्ज को राज्य देकर भोज को उसे सौंप दूँ। ऐसा करने से वंश का नाश भी न होगा और मुञ्ज बड़ा लोभी है सो वह भी ख़ुश रहेगा। जब भोज बड़ा

हो जायगा और उसमें राज्य करने का सामर्थ्य हो जावेगा तब वह अपने आप उससे राज्य ले लेगा।

राजा के प्रधान मन्त्री बुद्धिसागर ने यह सब हाल सुनकर राजा से कहा—आपका विचार ठीक है। आपको ऐसा ही करना चाहिए। ऐसा ही करने से राज्य का काम ठीक-ठीक चल सकेगा, नहीं तो उत्पात होने का डर है।

अब राजा ने अपने भाई मुञ्ज को बुलवाया। उसके आने पर राजा ने कहा—भाई मुञ्ज! राज्य का समस्त भार मैं तुमको सौंपता हूँ। इसको तुम अच्छी तरह से चलाओ। यह मैं अपना पुत्र भोज भी तुमको सौंपता हूँ। यह पुत्र बहुत छोटा है। इसकी रक्षा करनेवाले तुम्हीं हो। जब यह बड़ा हो जावे तब इसका राज्य तुम इसको दे देना और तुमको जो गाँव राज्य की ओर से मिले हुए हैं उनका कारोबार सँभालना।

मुञ्ज ने राजा का कहना अच्छे प्रकार सुना और सब कुछ स्वीकार किया। थोड़े दिन के बाद राजा सिन्धुल स्वर्ग को सिधार गये। राजा के मरने पर सारे राज्य में और राजभवन में शोक छा गया। सब लोगों ने राजा के मृतक शरीर का श्मशान-भूमि में अग्निसंस्कार किया और घर लौट आये।

राजा के मरने के बाद की सब और्ध्वदैहिक क्रियाएँ जब हो चुकीं तब मन्त्रियों ने और राजघराने के लोगों ने बड़े ठाट-बाट के साथ मुञ्ज को राजसिंहासन पर बैठाया। मुञ्ज का राजतिलक हो गया।

राजा मुञ्ज बड़ा लोभी और स्वार्थी था। उसको अनायास ही राज्य मिल गया, इसलिए वह बड़ा प्रसन्न हुआ। अब उसने अपनी हाँ में हाँ मिलानेवाले नौकरों को ढूँढ़ना आरम्भ किया। जो पुराने नौकर थे और राज्य में प्रधान कार्यकर्त्ता माने जाते थे उनमें से उसने अपने अनुकूल नौकरों को तो रहने दिया और बाक़ी को बर्ख़ास्त कर दिया। उनकी जगह नये-नये नौकर नियत किये। जब पुराने नौकर निकाले गये और नये-नये रक्खे गये तब पहले तो प्रजा में ख़ासी हलचल मची किन्तु कुछ समय के बाद शान्ति हो गई।

नये-नये राजकर्मचारी और अधिकारी अपनी इच्छा के अनुसार प्रजा को सताने लगे। उनको जैसा अच्छा मालूम हुआ वैसा ही उन्होंने प्रजा को दुख दिया। प्रजा की पुकार पर राजा ने कुछ भी ख़याल न किया। इस तरह कुछ समय बीता।

चौथा परिच्छेद

भोज का विद्याध्ययन और उसे मारने का उपाय

जब राजकुमार भोज की अवस्था सात वर्ष की हुई तब राजा मुञ्ज ने उसको विद्या पढ़ाने का विचार किया। उसके लिए अलग एक पाठशाला नियत की गई और अच्छे-अच्छे अध्यापक रक्खे गये। भोज का यज्ञोपवीत किया गया और उसको विद्या पढ़ाने की आज्ञा दी गई। भोज की उस समय उम्र कम थी तो भी वह विद्या पढ़ने में बड़ा ध्यान लगाता था। उसको जो कुछ पढ़ाया जाता था उसे वह अच्छी तरह समझकर याद कर लेता था। उसका बर्त्ताव और चतुरता देखकर पढ़ानेवाले उसके आचरण की और बुद्धि की बड़ी प्रशंसा किया करते। वे लोग उससे बड़े प्रसन्न रहते। कैसा ही पाठ मुश्किल हो पर भोज अच्छी तरह समझकर याद कर डालता था। इस तरह थोड़े दिनों में उसने विद्या, कला, मन्त्र, तन्त्र,

आदि विषयों में सर्वाङ्ग-पूर्णता प्राप्त कर ली। वह कई विद्याओं को अच्छी तरह जान गया।

एक दिन राजा मुञ्ज उस पाठशाला को देखने गया जिसमें भोज पढ़ता था। उस वक़् भोज की उम्र बारह-तेरह वर्ष की हो चुकी थी। मुञ्ज ने भोज से बातचीत की। बातचीत से मालूम हुआ कि वह तो हर एक बात में बड़ा होशियार हो गया है। उसके अपूर्व चातुर्य को देख मुञ्ज ने सोचा कि इस थोड़ी उम्र में तो इसकी यह दशा है, यह इतना चतुर हो गया है, जब यह बड़ा होगा तब मुझसे अपना राज्य ज़रूर छीन लेगा। इसलिए इसका कुछ उपाय अभी से किया जावे तो ठीक है। लोकनिन्दा से डरना ठीक नहीं। अगर मैं लोक-निन्दा का ख़याल करूँगा तो ज़रूर पीछे पछताना पड़ेगा। मैं जो कुछ करना चाहूँगा वह अवश्य ठीक हो जावेगा। जब तक यह छोटा है तभी तक कुछ उपाय चल सकता है। बड़ी उम्र होने पर कोई उपाय काम न देगा।

इस तरह विचार करते-करते कई दिन बीत गये। मुञ्ज को न रात को नींद आती थी, न दिन को भूख लगती थी। वह यही सोचा करता था कि अब क्या उपाय करना चाहिए। मुञ्ज एक दिन अपनी सभा में इसी शोकसागर में डूबा हुआ बैठा था। राजपुरोहितों से तो वह राजकुमार भोज के भाग्य का हाल पहले ही पूछ चुका था। उस दिन सभा में अकस्मात् एक ब्राह्मण आ गया। वह बड़ा अच्छा ज्योतिषी था। ज्योतिष-

शास्त्र का उसने अच्छी तरह अध्ययन किया था। और विद्याओं का भी उसने अभ्यास किया था। उस पण्डित ने आते ही कहा कि 'राजा के लिए कल्याण हो।' वह इस तरह आशीर्वाद देकर बैठ गया। बैठकर कहने लगा कि हे देव! संसार मुझको सर्वज्ञ—सब कुछ जाननेवाला—कहा करता है, इसलिए आप भी मुझसे कुछ पूछिए। क्योंकि विद्वान् का काम है कि अपनी विद्या का सदा दूसरों में प्रकाश करता रहे। जो विद्या गुरु में तथा पुस्तक में होती है उससे मूर्ख मनुष्य रोका जाता है—मूर्ख के पास विद्या जाती ही नहीं, उससे सदा दूर रहती है।

इस तरह पण्डित ने जब राजा से कहा तब राजा भी उसकी घमण्ड-भरी बातें सुनकर बोला कि मैंने जन्म से लेकर आज तक जो-जो काम किये हों और जैसे-जैसे आचरण किये हों उन सबको यदि आप कह सकें तो आप अवश्य सर्वज्ञ हैं। यह सुनकर ब्राह्मण ने राजा का कुल हाल बतला दिया; जो-जो काम राजा ने किये थे तथा जो कुछ उसके गुप्त भेद थे, सब कह सुनाये। उस ब्राह्मण की सर्वज्ञता जानकर राजा बड़ा ख़ुश हुआ और उसके चरणों में गिर गया। फिर इन्द्रनीलमणि तथा पुष्पराज आदि मणियों से जड़े हुए अपने सिंहासन पर पण्डित को बैठाया और कहा—

"विद्या माता की नाईं मनुष्य की रक्षा करती है, पिता की तरह अच्छे-अच्छे कामों में लगाती है, अपनी स्त्री की

तरह थकावट दूर करके सुख देती है; चारों ओर कीर्ति फैलाती है और लक्ष्मी को बढ़ाती है। विद्या कल्पवृक्ष की लता की तरह मनुष्य के कौन-कौन काम सिद्ध नहीं करती ? अर्थात् संसार के जितने काम हैं वे सब विद्या से ही ठीक बनते हैं। बिना विद्या के कोई काम ठीक-ठीक सिद्ध नहीं होता।"

ऊपर कही हुई विद्या की महिमा सुनकर राजा ने उस ब्राह्मण को अच्छी जाति के दस घोड़े दिये। राजा की सभा में बुद्धिसागर नामक मन्त्री बैठा हुआ था। उसने राजा से कहा कि देव! इस पण्डित से भोज की जन्मपत्री के विषय में पूछिए। तब राजा मुञ्ज ने ब्राह्मण से कहा कि भोज की जन्मपत्री विचारिए। ब्राह्मण ने कहा कि भोज को मेरे पास बुलाइए। तब राजा ने सर्वाङ्गसुन्दर भोज को अपने एक शूर-वीर नौकर द्वारा पाठशाला से बुलवाया। भोज आया और अपने पिता की नाईं मुञ्ज को विनयपूर्वक प्रणाम करके खड़ा हो गया। भोज की छवि देखकर सभा के सब मनुष्य मोहित हो गये। उनको ऐसा मालूम होने लगा मानों भूमण्डल पर राजा इन्द्र आ गया है और कामदेव ने तथा सौभाग्य ने मानों शरीर धारण किया है।

उस पण्डित ने भोज को देखकर राजा मुञ्ज से कहा—राजन्! भोज का भाग्योदय कहने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। ब्रह्मा भी नहीं बतला सकते हैं तो भला मैं एक छोटा सा ब्राह्मण क्योंकर कह सकता हूँ ? फिर भी अपनी बुद्धि के

अनुसार कुछ अवश्य करूँगा। अब आप इसको यहाँ से पाठशाला में भेज दीजिए। राजा की आज्ञा से भोज पाठशाला को चला गया। फिर ब्राह्मण ने कहा—

"पचपन वर्ष, सात महीने, और तीन दिन तक राजकुमार भोज राजा बनकर बङ्गाल देश-सहित दक्षिण देश का राज्य करेगा।"

इस तरह उस पण्डित की बातें सुनकर राजा मुञ्ज अपनी चतुराई से मुसकुराता रहा तथा अपने मुँह की कान्ति भी बनाये रहा; तो भी उसका मुँह सुस्त मालूम होने लगा। थोड़ी देर बाद ब्राह्मण को राजा ने बिदा कर दिया। आधी रात को अपनी चारपाई पर पड़ा हुआ मुञ्ज सोचने लगा कि अगर राजलक्ष्मी भोज को मिल गई तो मैं जीता हुआ भी मरे के समान हो जाऊँगा क्योंकि—

जब मनुष्य के पास धन नहीं रहता तब उसकी बुद्धि काम नहीं देती। धन की गर्मी न रहने पर मनुष्य कुछ का कुछ मालूम होने लगता है। उसकी इन्द्रियां उसके पास पूर्ववत् रहती हैं पर जब धन नहीं रहता तब वे कुण्ठित हो जाती हैं, कुछ काम नहीं कर सकतीं। उस मनुष्य के शरीर के साथ सम्बन्ध रखनेवाली सब बातें बनी रहती हैं पर सिर्फ़ धन न रहने से उस वक़्त उसकी कोई भी बात काम नहीं करती। यह बड़ा आश्चर्य है। और—

जो कार्यसिद्धि में अपने शरीर तक की पर्वा नहीं करता, जो चतुर है, जो अपने मन में प्रत्येक कार्य का ठीक-ठीक

निश्चय कर लेता है और जो बुद्धि से विचारकर कामों को शुरू करता है उसके लिए संसार में कोई काम मुश्किल नहीं। वह सभी काम आसानी से कर सकता है।

जो दूसरों के गुणों की कभी बुराई नहीं किया करता तथा अपने सब काम उपाय विचारकर करता है उसकी आज्ञा का पालन मित्र और मन्त्री आदि सब अच्छी तरह किया करते हैं।

इसलिए आज मेरे लिए कोई काम मुश्किल नहीं है मैं सब काम अच्छी तरह कर सकता हूँ क्योंकि—

जो सब कामों को चतुरता से करता है, और प्रत्येक काम को तर्क-वितर्क के साथ किया करता है तथा दूसरों की बुराई से जो सदा डरता रहता है उसको दूर से ही सम्पति मिला करती है और—

जो लेने के योग्य और देने के योग्य तथा करने योग्य काम हैं उनको जल्दी ही कर डालना चाहिए; नहीं तो उनके रस को काल पी जाता है—अधिक वक़्त हो जाने पर फिर वे काम ठीक-ठीक नहीं होते।

चतुर मनुष्य को चाहिए कि अपमान को आगे करे और मान को पीठ पीछे करके अपना काम बना ले। काम का बिगाड़ देना मूर्खता कहलाती है। वक़्त पर काम ठीक हो जाना चाहिए। मान और अपमान का कुछ भी ख़याल न करना चाहिए।

बुद्धिमान् को चाहिए कि थोड़े से काम के लिए बहुत को (धन आदि पदार्थों को) बरबाद न कर दे। बुद्धिमत्ता यही है कि थोड़े काम से बहुत काम बना ले।

जो पैदा होते ही शत्रु या बीमारी को शान्त नहीं कर देता वह बड़ा मज़बूत होने पर भी उस शत्रु या बीमारी से मारा जाता है।

जो अपनी रक्षा बुद्धि-द्वारा कर लेता है उसका शत्रु कुछ नहीं कर सकते—जिस तरह जो मनुष्य हाथ में छतरी लिये हुए है उसको जल की धारा नहीं भिगो सकती। और—

जिनसे कुछ नतीजा न निकले, जो बड़ी मुश्किल से बन सकें, जिनमें नफ़ा-नुक़सान बराबर हों और जिनके तैयार करने में बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ें ऐसे कामों को पण्डित—चतुर—मनुष्य आरम्भ ही नहीं करते।

इस तरह सोच-विचार करते हुए मुञ्ज राजा ने दिन के तीसरे पहर अकेले में ही सलाह की और अपना एक सेवक दूत वङ्ग देश में महाबली राजा वत्सराज को बुलाने के वास्ते भेजा। उस दूत ने जाकर राजा वत्सराज से कहा कि आपको राजा मुञ्ज बुलाते हैं। यह सुनकर वह राजा मय अपने कुटुम्बी मनुष्यों के रथ पर सवार होकर आया। वह राजा को प्रणाम करके बैठ गया। राजा मुञ्ज ने उसी वक़् अपनी कचहरी बरख़ास्त कर दी। उसने वत्सराज से कहा—

राजा जब अपने नौकर से ख़ुश हो जाता है तब सिर्फ़ उसका सत्कार किया करता है, और सत्कार पाया हुआ नौकर उस राजा का अपने प्राणों तक से उपकार किया करता है। अब तुम आज रात को भोज को भुवनेश्वरी वन में ले जाना और वहा पर इसको मारकर इसका सिर ज़नाने महल में ले आना।

यह सुन वत्सराज खड़ा हो गया और प्रणाम करके राजा से कहने लगा—हे राजन्! मैंने आपकी आज्ञा स्वीकार कर ली; किन्तु मुझ पर आप प्रेम किया करते हैं इसलिए मैं कुछ कहना चाहता हूँ। कहने में शायद अपराध हो जावे तो क्षमा कीजिएगा। बात यह है कि भोज के पास न तो धन-दौलत है, न सेना है और न उसका कुटुम्ब ही बलवान् है। वह तो अत्यन्त ग़रीब की तरह रहता है। हे प्रभो! भोज में किसी तरह का सामर्थ्य नहीं है। फिर वह मारने के योग्य क्यों ठहराया गया? वह सिर्फ़ अपना पेट ही भर लिया करता है। वह सदा आपके चरणों में आसक्त रहता है। हे राजन्! इन कारणों से मैं भोज के मार डालने में कोई विशेष कारण नहीं समझता।

जब वत्सराज चुप हो गया तब राजा ने प्रातःकाल ज्योतिषी से सुना हुआ सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर उससे वत्स-राज हँसता हुआ कहने लगा—रामचन्द्रजी तीनों लोकों के स्वामी हुए हैं और वशिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र थे। उन्होंने भी राज्य-तिलक के लिए मुहूर्त्त का निश्चय किया था। पर हुआ क्या

कि उस मुहूर्त्त ने रामचन्द्रजी का राज्यतिलक न होने दिया किन्तु उनको वन जाना पड़ा; सीता का हरण हुआ और वशिष्ठ का वचन झूठा हो गया। हे राजन्! न जानने के बराबर कुछ जाननेवाला और अपना पेट भरनेवाला यह ब्राह्मण कौन है जिसके कहने पर आप अत्यन्त खूबसूरत सुकुमार बालक को मरवाना चाहते हैं? यह ब्राह्मण मुझे मूर्ख प्रतीत होता है। आप इसके कहने में आकर इतना अनर्थ क्यों करना चाहते हैं?

'इस काम के करने से क्या नतीजा निकलेगा और न करने से क्या फल होगा यह अच्छी तरह सोच-विचारकर बुद्धिमान् मनुष्य उस काम को करे या न करे। चतुर मनुष्य काम का फल विचारकर काम शुरू किया करते हैं। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि पहले यह अच्छी तरह सोच ले कि यह काम करने योग्य है या नहीं और इसका क्या फल होगा। जो काम बिना विचारे जल्दी से किये जाते हैं उनका नतीजा अच्छा नहीं होता। वे सदा काटे के समान हृदय में चुभनेवाले और दुख देनेवाले होते हैं। आप पहले अच्छी तरह विचार लीजिए कि इस अनर्थ के करने से क्या फल होगा। मेरी राय में आपको पीछे पछताना पड़ेगा। और देखिए—

जिसके साथ बैठना-उठना, खाना-पीना, हँसना-खेलना, बोलना होता है और जिसका बहुत विश्वास किया जाता है

उसके साथ बुरे मनुष्य का भी—मूर्ख का भी—मरण-पर्यन्त मेल बना रहता है, उसके साथ कभी बिगाड़ नहीं होता।

दूसरी बात यह कि इस भोज के मरवा देने से बुड्ढे सिन्धुल राजा के जो बड़े प्रेमपात्र शूरवीर हैं और जो इस समय तुम्हारी आज्ञा में चलते हैं वे सब तुम्हारे नगर को इस तरह बरबाद कर देंगे जिस तरह बड़े बादलों की प्रबल घटा बरसकर नगर को डुबोकर नष्ट कर देती है। यद्यपि बहुत दिन से तुम्हारी जड़ मज़बूत हो रही है तो भी शहर के रहनेवाले विशेष कर भोज को ही राजा मान रहे हैं, तुमको नहीं।

यह भी ठीक ही है कि मनुष्य कार्य तो अच्छे करता हो पर बुरी नीति को काम में लाता हो तो वह कुनीति लक्ष्मी की शोभा को नष्ट कर देती है, जिस तरह हवा दिये की ज्योति को, तेल से अच्छी तरह भीगी होने पर भी, बुझा देती है।

इन नीति के वचनों से मालूम होता है कि हे राजन्! पुत्र का मारना किसी तरह ठीक नहीं है।

वत्सराज की बातें सुनकर राजा मुञ्ज को बड़ा ग़ुस्सा आया। वह बोला—राजा तो तू ही है, तू सेवक नहीं है। क्या तूने नीति का वचन नहीं सुना कि स्वामी की कही हुई बात को जो पूरा नहीं करता वह नौकर सब नौकरों से नीच समझा जाता है। उस नौकर का जीना भी इस तरह व्यर्थ है जिस तरह बकरी की गर्दन में थन व्यर्थ होते हैं।

मुञ्ज ने जब इस तरह कहा तब वत्सराज ने अपने मन में विचार किया कि जैसा समय हो वैसा ही विचारकर कार्य करना चाहिए। इस तरह समझकर वह चुप हो रहा।

इसके बाद जब सूर्य छिपने लगा तब ग़ुस्से में भरा हुआ वत्सराज ऊँचे महल से उतरा। उसको यमराज की तरह आता हुआ देखकर, इकट्ठे हुए सब सभासद डर गये और अनेक बहाने करके अपने-अपने घर को चले गये। फिर वत्सराज ने अपने घर की रक्षा के वास्ते बहुत से नौकर भेज दिये। और अपना रथ ले जाकर भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर के सामने खड़ा कर दिया, फिर एक नौकर से कहा कि तुम उस पण्डित को बुला लाओ जो भोज को पढ़ाया करता है। नौकर ने जाकर पण्डित से कहा कि तुमको वत्सराज बुलाता है। उस नौकर ने पण्डित का हाथ पकड़ लिया और ले चला। यों अचानक बुलाये जाने से पण्डित ने मन में सोचा कि क्या वज्र आ पड़ा! क्या यह भूत चिपट गया या किसी ग्रह ने ग्रस्त कर लिया है। जब वत्सराज के पास पहुँचा तब बुद्धिमान् वत्सराज ने उसको प्रणाम किया और कहा कि पण्डितजी! बैठिए। फिर कहा कि राजा के पुत्र जयन्त को पाठशाला से बुलवाइए। इसके अनन्तर जयन्त कुमार आया। उससे कुछ पठन-पाठन पूछकर उसको वापस कर दिया। फिर वत्सराज ने पण्डित से कहा कि अब भोज को बुलवाइए। भोज पहले से ही सब हाल जानता था। वह ग़ुस्से में भरकर लाल आँखें किये हुए

आया और बोला—आश्चर्य की बात है! अरे पापी! मैं प्रधान राजकुमार हूँ। अकेला मुझको राजभवन से बाहर ले जाने की तेरी क्या शक्ति है? इस तरह कहकर भोज ने अपने बायें पैर की खड़ाऊँ उठा ली और ज़ोर से वत्सराज के सिर में मार दी। वत्सराज ने यह कहकर कि हम तो राजा की आज्ञा का पालन करते हैं, झट भोज को उठाकर रथ में बैठा लिया और तलवार को म्यान से निकालकर जल्दी से देवी के भवन को चल दिया। इस प्रकार भोज के पकड़े जाने पर लोग शोर मचाकर कहने लगे—अरे! यह क्या है! क्या है! इस तरह कहते हुए शूर-वीर योधा दौड़े हुए आये। जब उनको मालूम हुआ कि वत्सराज ने भोज को मारने के लिए पकड़ा है तब कोई हाथीख़ाने में और कोई घुड़साल में घुस-कर, जिसको जो मिला उसी को वह मारने लगा। फिर गली-कूचे में, राजभवन के दर्वाजे़ पर, चारों ओर बाजों के बजने का ऐसा शब्द हुआ कि आकाश गूँज उठा। अब कोई तो पैनी तलवार से, कोई ज़हर खाकर, कोई भाला मारकर, कोई अग्नि में गिरकर, कोई ज़मीन पर पछाड़ खाकर, कोई जल में डूबकर—ब्राह्मण, स्त्री, राजपूत, राजसेवक और सामन्त राजा तक—अपने-अपने प्राणों का घात करने लगे।

भोज की माता का नाम सावित्री था। उसने जब दासी से अपने लड़के का हाल सुना तब वह मुँह ढाँपकर रो-रो कहने लगी कि हा पुत्र! तुमको तुम्हारे चाचा ने

किस दशा को पहुँचाया। मैंने आज तक जो कुछ व्रत और नियम तुम्हारे वास्ते किये थे वे सब निष्फल हो गये। मुझे दसों दिशाएँ शून्य दीखती हैं। हे पुत्र! सर्वज्ञ देव ने सब ऐश्वर्य नष्ट कर दिया। हे पुत्र! जो यहाँ दासियों के सिर कटे हुए पड़े हैं इनको तो एक बार देखो। इस तरह कहती और विलाप करती हुई भोज की माता ज़मीन पर गिर पड़ी।

इसके बाद जिस तरह बहुत अग्नि जलने से धुआँ उठता है और अँधेरा छा जाता है इसी तरह आकाश मलिन हो गया। और मानों पाप के डर से पश्चिम दिशा में सूर्य छिप गया हो, इस तरह सूर्य के अस्त हो जाने पर वत्स-राज महामाया के मकान पर पहुँचकर भोज से कहने लगा—हे कुमार! हे नौकरों के स्वामी भोज! ज्योतिः-शास्त्र को अच्छी तरह जाननेवाले एक ब्राह्मण ने राजा मुञ्ज से कहा कि अब राज्य का भोग भोज करेगा। यह सुनकर मुञ्ज ने तुमको मारने के वास्ते मुझे हुक्म दिया है।

भोज ने कहा—श्रीरामचन्द्रजी का वनवास होना, राजा बलि का बाँधा जाना, पाण्डवों का वन में रहना, यादवों का मारा जाना, राजा नल का राज्य से अलग होना और दूसरे के घर रहकर रसोइये का काम करना, और बली रावण का मारा जाना, इन घटनाओं को देखो। सब लोग काल के वश होकर नष्ट हो जाते हैं, कोई नहीं बचता। और देखो—

चन्द्रमा—लक्ष्मी, कौस्तुभमणि और कल्पवृक्ष का सगा भाई है और—अमृतरूपी क्षीरसमुद्र का लड़का है। उसे महादेवजी ने विनयपूर्वक ख़ुशी से अपने मस्तक पर धारण किया है। इस तरह का बड़प्पन रखता हुआ चन्द्रमा अब भी दैव बल से क्षीणता का त्याग नहीं करता। उसकी कला हमेशा क्षीण हुआ करती है। पत्थर पर जो लकीर खोदी जाती है वह मिटाये नहीं मिटती—ऐसे ही विधाता की गति है—जो होनहार है वह किसी के मिटाये नहीं मिटती। उसका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता।

भयानक भूमि पर विचरना, पर्वत पर चढ़ना, समुद्र में तैरना, क़ैद में रहना, गुफा में घुसना; यह सब विधाता की रचना है। इसको कौन पार कर सकता है, सब भोगना ही पड़ता है। इसके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता।

जो अपनी इच्छा मात्र से जल को थल और थल को जल कर सकता है; जो धूल के कण को पर्वत, और सुमेरु पर्वत को रजकण बना सकता है; जो तिनकों को वज्र के समान और वज्र को तिनके के समान कर सकता है; जो आग को ठण्डा और शीत को गर्म बना सकता है; ऐसे क्रीड़ा-कौतुक करनेवाले अघटनघटनापटु भगवान् के लिए हमारा प्रणाम है।

अब भोजराज ने बरगद के दो पत्ते लिये और उनका एक दोना बनाया। फिर अपनी जाघ में छुरी से छेद किया और उससे निकले हुए ख़ून की कुछ बूँदें उस दोने में डाल दीं।

इसके बाद एक तिनका लेकर एक पत्ते पर उस ख़ून से भोज-राज ने एक श्लोक लिखा और वत्सराज से कहा—हे महा-भाग! यह पत्र राजा मुञ्ज को दे देना। अब आप भी राजा की आज्ञा का पालन कीजिए—अर्थात् मेरा सिर काटकर राजा की आज्ञा पूरी करके बिदा हूजिए।

वत्सराज का छोटा भाई भी वहाँ साथ गया था। उसने जब मरते समय भी भोज के मुँह की कान्ति ज्यों की त्यों देखी—उसके मुँह पर उस समय भी कुछ भी उदासी होती हुई न देखी—तब उसने कहा—एक धर्म ही ऐसा सच्चा मित्र है जो मरने के बाद भी साथ जाता है। और जितने परिवारवाले, रिश्तेदार या धन-दौलत जो कुछ भी है वह सब, जिस समय इस शरीर से प्राणपखेरू उड़ता है उस समय, साथ छोड़कर यहीं बने रहते हैं; एक भी साथ नहीं जाता।

शरीर के नष्ट होने पर माता, स्त्री, पुत्र, मित्र, भाई, बन्धु आदि कोई भी मदद करने के लिए साथ नहीं देता, एक धर्म ही साथ जाता है।

इस दुनिया में आकर जो मनुष्य धर्म से विमुख रहता है—धर्म की परवा नहीं करता—वह चाहे जैसा बलवान् हो तब भी निर्बल है; चाहे जैसा धनी हो तब भी निर्धन है और चाहे जैसा शास्त्र का जाननेवाला हो, अच्छा पढ़ा-लिखा हो तब भी मूर्ख है। बलवान्, धनवान् और पण्डित होना तभी सार्थक होते हैं जब वे धर्मानुसार काम करनेवाले हों; नहीं

तो ऐसे बड़े-बड़े अनर्थ करनेवाले हो जाते हैं जो सर्वथा दुखदायी होते हैं।

जो मनुष्य इसी संसार में नरकरूपी बीमारी की दवा नहीं कर लेता वह रोगी बनकर, जहाँ दवा वग़ैरह कुछ भी नहीं मिलती ऐसे, नरक में जाकर क्या कर सकेगा? कुछ नहीं।

जो मनुष्य वृद्धावस्था को जानता है—जो जवानी में यह समझता है कि मैं बूढ़ा अवश्य हूँगा—जो मौत को भी जानता है कि मैं अवश्य मरूँगा और जो भय तथा रोग को भी समझता है वही पण्डित कहलाता है। तात्पर्य यह कि जो इन बातों को अच्छी तरह जान लेता है उससे बुरे काम नहीं हो सकते। ऐसा मनुष्य कहीं ठहरे, कहीं आराम करे, कहीं सोवे और चाहे जिसके साथ हँसे-खेले, वह सदा ख़ुशी रहेगा और हमेशा उसको आराम मिलेगा। वह कभी दुखी नहीं हो सकता।

हे वत्सराज! तुम अपने समान जातिवालों को, अपने समान उम्रवालों को और अपने समान रूपवालों को देखो कि वे किस तरह मरकर नष्ट हो जाते हैं। क्या उनको देखकर भी तुमको डर और दुख नहीं होता? मालूम होता है, तुम्हारा हृदय वज्र के समान है।

वत्सराज ने जब अपने छोटे भाई के इन वचनों पर ख़याल किया तब उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ और भोजराज को प्रणाम करके वह कहने लगा कि मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। वह शाम का वक़्त था और अधिक अँधेरा हो गया था, इस-

लिए वत्सराज भोजराज को वहाँ से बिना ही मारे अपने घर वापस ले आया; उसको छिपाकर तहख़ाने में रक्खा और उसकी रक्षा की। फिर उसने बड़े होशियार चित्र बनानेवालों से भोज का नक़ली सिर बनवाया। उसके कानों में बढ़िया कुण्डल वैसे ही पड़े हुए थे, उसका मुँह वैसा ही चमक रहा था जैसा कि भोज का था और आँखें मीचे हुए था। राजा भोज का ही सा सिर जब बिलकुल तैयार हो गया तब वत्स-राज, उस सिर को लेकर, राजभवन में गया और राजा मुञ्ज से प्रणाम करके कहने लगा कि हे राजन्! श्रीमान् ने जो हुक्म दिया था उसको मैं पूरा कर आया। राजा ने समझ लिया कि लड़का मारा गया। उसने पूछा कि हे वत्सराज! यह तो बताओ कि जब भोज के तलवार मारी गई तब उसने कुछ कहा था या नहीं? उस समय वत्सराज ने वही पत्र दे दिया जो भोज ने एक पत्ते पर ख़ून से लिख दिया था। पत्र पाकर राजा अपनी स्त्री से दीपक मँगवाकर उस पत्ते पर लिखे हुए अक्षरों को बाचने लगा। उसमें यह श्लोक लिखा था—

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः?
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते!
नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति॥

सत्ययुग में जो राजा मान्धाता बड़ा बुद्धिमान् और धर्मात्मा हुआ है वह भी नहीं रहा—ऐसा बड़ा राजा भी

प्रकृति के नियमानुसार मर गया—जिन्होंने समुद्र का पुल बाधा और लड़ाई में अपनी बहादुरी से बली रावण को मार गिराया वे रामचन्द्रजी भी कहाँ हैं—वे भी मर गये - और भी बड़े-बड़े प्रतापी राजा युधिष्ठिर आदि इस संसार में पैदा हो गये हैं वे भी स्वर्गलोक में पहुँच गये। ऐसे महा-पराक्रमी और बड़े शूरवीर धर्मात्मा राजाओं के भी साथ यह पृथ्वी या पार्थिव पदार्थ कोई न गया, सब यहीं रह गये। हे मुञ्ज! अब मालूम होता है कि यह पृथ्वी तुम्हारे मरने पर तुम्हारे साथ ज़रूर जावेगी!

राजा मुञ्ज ने जब इन वाक्यों को उस पत्र में लिखा पढ़ा और उनका मतलब समझा तब फ़ौरन् खाट पर से ज़मीन पर गिर पड़ा। रानी पास ही खड़ी थी। उसने जब देखा कि राजा बेहोश हो गये हैं तब वह अपने डुपट्टे के एक किनारे से राजा के ऊपर हवा करने लगी। हवा से राजा को कुछ होश हुआ और कहा कि हे रानी! मैं पुत्रघाती हूँ, मैंने अपने योग्य लड़के को मरवा डाला है। अब तू मुझे मत छू। उस वक्त कुररी पक्षी की तरह विलाप करते हुए उसने द्वारपालों को बुलाया और उनको हुक्म दिया कि ब्राह्मणों को बुला लाओ। द्वारपाल फ़ौरन् बहुत से ब्राह्मणों को बुला लाये जब ब्राह्मण लोग आये तब राजा ने सबको दण्डवत् किया और कहा कि मैंने अपना पुत्र मार डाला है, आप लोग मुझे इसकी प्राय-श्चित्तविधि बतलाइए उन्होंने कहा कि हे राजन्! इसका

यही प्रायश्चित्त है कि आप फ़ौरन् अग्नि में प्रवेश करें। दूसरे प्रायश्चित्त से इस पाप से छुटकारा नहीं हो सकता।

इतनी बातें हो ही रही थीं कि वहाँ बुद्धिसागर आ पहुँचा। उसने कहा कि हे राजन्! जैसे तुम अधम राजा हो वैसे ही तुम्हारा मन्त्री वत्सराज भी नीच है। क्योंकि जिस समय राजा सिन्धुल राज्य से अलग हुआ उस समय अपना सारा राज्य तुमको दे दिया और भोज को तुम्हारी गोद में दिया कि तुम उसकी रक्षा करना। पर तुमने भोज के चाचा होने पर भी उसको मरवा डाला! सच है—

जिन मनुष्यों का स्वभाव बुरा है, जिनकी दुष्ट प्रकृति है वे थोड़े दिन रहनेवाली जवानी के ग़रूर में भरकर ऐसे अनर्थ कर डालते हैं कि जिनसे उनका जन्म ही व्यर्थ हो जाता है। वे ऐसी बुराइयाँ कर बैठते हैं कि दूसरों में मुँह दिखाने के योग्य नहीं रह जाते।

अच्छे मनुष्य ऐसे-ऐसे स्वभाव के होते हैं कि अपने सिर से तिनका उतारनेवाले के एहसान को करोड़ मोहर देने के बराबर मानते हैं। और, बुरे मनुष्यों का यह स्वभाव होता है कि कोई मनुष्य प्राण त्याग करके भी—नाना प्रकार के दुःख सहकर भी—उनका उपकार करे तो वे उसको भी वैरी सा ही समझा करते हैं।

जो कोई अपने साथ भलाई करे या कोई बुराई करे तो उसको याद रखना चाहिए। जो ऐसा नहीं करते उनका

हृदय पत्थर के समान सख़्त समझना चाहिए। ऐसों का जीना वृथा ही है।

जिस तरह छोटे-छोटे अंकुरों की बड़े यत्न से रक्षा करने पर वे समय पाकर—अपने वक़्त पर—फल देते हैं, इसी तरह जिस मनुष्य की अच्छी तरह रक्षा की जाती है वह कभी न कभी अवश्य फल देनेवाला होता है।

सोना, अन्न, रत्न और भी बहुत तरह के धन तथा संसार की जितनी चीज़ें हैं वे सब प्रजा से ही राजा को मिला करती हैं।

अगर राजा धर्मात्मा हो तो प्रजा ज़रूर धर्मात्मा होगी। अगर राजा पापी हो तो प्रजा भी पापी बन जाती है। प्रजा राजा के अनुसार हुआ करती है; जैसा राजा होता है, प्रजा स्वयमेव वैसी ही बन जाती है।

निदान राजा ने उसी रात को अग्नि में प्रवेश करना निश्चित किया। तब राजा के साथ के बैठने-उठनेवाले, राज्य तथा शहर के रहनेवाले, बहुत से मनुष्य राजा मुञ्ज से मिलने आये। उस समय सब जगह यह ख़बर फैल गई कि राजा ने पुत्र को मरवा डाला है। वह उस पाप से डर रहा है और अग्नि में प्रवेश करना चाहता है। इसके बाद बुद्धिसागर मन्त्री ने द्वारपालों को बुलाकर कह दिया कि राजा के महल में कोई मनुष्य न आने पावे और वह ख़ुद अकेला ही राजा के महल में जाकर बैठ गया। फिर राजा के मरने को तैयार होने की बात सुनकर वत्सराज सभा के स्थान में आया और बुद्धिसागर

को प्रणाम कर धीरे-धीरे कहने लगा—"हे भाई! मैंने भोजराज को बचा रक्खा है, उसको मारा नहीं है।" यह सुनकर बुद्धिसागर ने वत्सराज के कान में धीरे से कुछ कह दिया और वह वहाँ से चला गया।

इसके बाद थोड़ी ही देर में एक मनुष्य आया जो हाथ में सुन्दर हाथीदाँत की छड़ी लिये हुए था और सिर पर बालों की जटा बनाये हुए था। उसके शरीर में कपूर की सी धूल-सहित सफ़ेद भस्म लगी हुई थी। उसके सारे शरीर की ऐसी शोभा बन रही थी मानों मूर्ति धारण करके कामदेव आ गया है। वह स्फटिक मणि के कुण्डल पहने और रेशमी कपड़े की कौपीन धारण किये था। कापालिक वेश में सभा में आकर वह इस तरह खड़ा हो गया मानों मूर्ति धारण कर महादेवजी आये हों। उसको देखते ही बुद्धिसागर ने पूछा—हे योगीन्द्र कापालिक! तुम कहाँ से आये हो? तुम कहाँ रहते हो? तुममें कुछ चमत्कारी कला है? क्या कोई इसमें औषध-बूटी है?

योगी ने उत्तर दिया—शिव! ऐसे सार वस्तु की खोज करनेवाले योगियों का देश-देश में घर है। प्रत्येक घर में भिक्षा का अन्न है। प्रत्येक तालाब और नदी में जल है। उनको ये सारी चीज़ें बड़ी आसानी से मिल जाती हैं।

योगियों के लिए गाँव-गाँव में बड़ी मनोरम कुटियाँ बनी हुई हैं। पर्वत के प्रत्येक झरने में उनके लिए जल है। भिक्षा

माँगने पर आसानी से अन्न मिल जाता है। योगियों को ऐश्वर्य मिलने से क्या प्रयोजन ?

हे भाई! सुनो, हम योगी हैं। हमारा कोई एक देश नहीं है। हम सम्पूर्ण भूमण्डल पर घूमा करते हैं। हम सदा गुरु के उपदेश का पालन करते हैं। सम्पूर्ण भूमण्डल को हम इस तरह सदा प्रत्यक्ष देखा करते हैं जिस तरह कोई मनुष्य आँवले को हाथ में लेकर देखे। हे भाई! साँप से काटे हुए को, ज़हर से घबराये हुए को, रोग से सताये हुए को, शस्त्र से कटे हुए सिरवाले को, इन सब तरह के दुखी मनुष्यों को हम आरोग्य कर देते हैं, दुख से छुड़ा देते हैं।

राजा मुञ्ज भी दीवार की ओट में बैठा हुआ उस योगिराज की सब बातें सुन रहा था। जब योगी कह चुका तब राजा निकलकर बाहर आया और योगी को प्रणाम कर कहने लगा—"हे योगीन्द्र! आप शिव-समान हैं, आप परोपकार करने में बड़े चतुर हैं। मैं बड़ा पापी हूँ। मैंने अपना एक लड़का मरवा डाला है। उस पुत्र को जिलाकर आप मेरी रक्षा कीजिए"। तब योगी ने कहा कि हे राजन्! डरो मत, तुम्हारा पुत्र नहीं मरेगा। वह महादेवजी की कृपा से घर पर आ जावेगा। अब तुम एक काम करो कि बुद्धिसागर के साथ श्मशान-भूमि (मुर्दघट) में हवन करने की सामग्री पहुँचा दो। यह कहने के बाद योगी ने जो-जो बातें राजा को बतलाईं वे सब राजा ने कीं। सब काम हो चुकने पर राजा ने

बुद्धिसागर को श्मशान-भूमि में भेजा। जब रात हो गई तब छिपे हुए भोज को भी नदी पर गुप्त रूप से पहुँचा दिया गया और यह प्रसिद्ध किया गया कि योगी ने भोज को जिला दिया। फिर भोज हाथी पर चढ़कर पुरवासी तथा मन्त्री लोगों के साथ राजभवन में आया। उस समय भाट लोगों ने स्तुति की धुन लगा दी और मृदङ्ग आदि बाजों की आवाज़ से कान बहरे हो गये। जब राजा मुञ्ज भोज से मिला तब रोने लगा। भोज ने राजा को रोने से रोका और उसकी बड़ी तारीफ़ की।

कुछ दिन के बाद राजा मुञ्ज ने बड़ी ख़ुशी के साथ भोज को राजसिंहासन पर बैठाकर, छत्र और चँवर से विभूषित कर, उसको राज्य दे दिया। भोज को तो राजतिलक करके राजा बना दिया और अपने सब लड़कों को एक-एक गाँव दे दिया। जयन्त लड़के पर मुञ्ज का अधिक प्रेम था, उसको उसने राजा भोज के सिपुर्द कर दिया।

कुछ दिन के बाद मुञ्ज ने विचार किया कि परलोक के लिए भी कुछ करना चाहिए, इसलिए उसने वानप्रस्थ आश्रम में जाने का निश्चय किया। क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि जब लड़के घर का कामकाज सँभालने योग्य हो जायँ तब वृद्ध मनुष्य को चाहिए कि वह वानप्रस्थ आश्रम में रहे। यही विचारकर मुञ्ज अपनी पटरानियों को साथ लेकर तपोवन को चला गया। वहाँ उसने जाकर ख़ूब तपस्या की। देवताओं और ब्राह्मणों की कृपा से राजा भोज भी अच्छी तरह राज्य करने लगा।

पाँचवाँ परिच्छेद

गोविन्द ब्राह्मण

अब राजा मुञ्ज तो तपोवन में तपस्या करने के लिए चला गया और राजा भोज बुद्धिसागर नामक मुख्य मन्त्री को अपने पास रखकर अच्छी तरह राज्य करने लगे। राज्य करते-करते जब बहुत समय बीत गया तब एक दिन राजा भोज अपने बगीचे को जाने लगे। जाते समय उन्हें रास्ते में सामने धारानगर का रहनेवाला एक ब्राह्मण मिला। राजा को देखते ही वह ब्राह्मण आँखें मींचकर आगे बढ़ा। जब दोनों बिलकुल पास आ गये और आमने-सामने हुए तब राजा ने पूछा कि हे ब्राह्मण! तुमने मुझको देखा और स्वस्ति—आशीर्वाद—क्यों नहीं दिया? तुमने मुझको देखते ही आँखें मींच लीं, इसका कारण क्या है? ब्राह्मण ने कहा कि हे देव! आप वैष्णव हैं, आप ब्राह्मणों को कुछ

हानि नहीं पहुँचायेंगे, इसलिए आपसे मुझे कुछ डर नहीं है। पर आप कभी किसी को कुछ दान नहीं देते, यह आपके लिए अच्छा नहीं है, इससे आपको कोई उदार नहीं कह सकता। आपको यदि आशीर्वाद ही दिया जाता तो क्या? नीतिकारों ने बतलाया है कि यदि कोई सबेरे कञ्जूस का मुँह देख ले तो जो किसी अन्य पुरुष से भी लाभ पहुँचता हो तो उसकी भी हानि हो जाती है। इसी कारण मैंने आपको देखकर आँखें मींच ली थीं। नीति में लिखा है—

जिसकी प्रसन्नता भी निष्फल रहे—यानी जिस पर वह ख़ुश हुआ हो उसको कोई फ़ायदा न पहुँचावे—और जिसका क्रोध भी व्यर्थ हो उस राजा को प्रजा अच्छी नज़र से नहीं देखा करती। और अप्रगल्भ पुरुष की विद्या, कञ्जूस मनुष्य का धन और डरपोक मनुष्य की भुजाओं का बल, ये तीन चीज़ें संसार में व्यर्थ मानी जाती हैं।

हे राजन्! मेरे वृद्ध पिता काशी को जा रहे थे। उस समय मैंने उनसे पूछा कि पिताजी! मुझको क्या करना चाहिए? तब पिताजी ने बतलाया—

हे पुत्र! अगर तुम्हारे हृदय में अच्छी नीति का बीज बोया गया है तो तुम ऐसे राजा की कभी सेवा न करना जिसको मन्त्रियों ने अपने क़ाबू में कर रक्खा हो और जो स्त्रियों के वश में रहता हो।

सब पापों में दो पाप बहुत बड़े हैं—एक तो ऐसा राजा जिसके पास बुरे मन्त्री रहते हों, दूसरे उस राजा की सेवा करना।

जहाँ मूर्ख राजा, गुणवान् पुरुषों से पराङ्मुख मन्त्री और बुरे मनुष्यों का ज़ोर होता है वहाँ अच्छे मनुष्यों को कभी मौक़ा नहीं मिल सकता।

जो राजा योग्य और गुणवान् हो, उसके पास चाहे धन-दौलत न भी हो तो भी उसके आश्रय में रहना चाहिए। क्योंकि किसी समय उससे ज़रूर फ़ायदा होगा।

हे देव! जो दान नहीं करते वे उदार नहीं कहलाते—उनको कोई अच्छा नहीं बतलाता। पहले समय में राजा कर्ण, दधीचि, शिवि और विक्रम आदि राजा हो गये हैं। वे इस समय परलोक में हैं—इस संसार में नहीं हैं पर उन्होंने दान आदि ऐसे सत्कर्म किये थे जिससे आज तक सारे संसार में उनका नाम मौजूद है; मानों वे आज तक यहाँ रहते हैं। क्या उनके समान और कोई राजा है?

जो अवश्य नष्ट होनेवाला शरीर है उसकी रक्षा करने से क्या लाभ है? रक्षा तो ऐसे यश की करनी चाहिए जिसका कभी नाश नहीं होता। मनुष्य मर जाता है, उसका शरीर नष्ट हो जाता है तो भी उसका यशरूपी शरीर जीता रहता है।

पण्डित हो या मूर्ख, बलवान् हो या दुर्बल, धनी हो या ग़रीब, सबके लिए मृत्यु बराबर है। मौत जब आती है तब वह यह ख़याल नहीं करती कि यह धनी है या बलवान्,

इसको छोड़ देना चाहिए। नहीं, वह सबके लिए एक सी है, उसके लिए धनी और ग़रीब सब एक से हैं।

उम्र चली जा रही है, एक क्षण भी नहीं ठहरती, इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने अनित्य शरीर के लिए एक कीर्ति का सञ्चय करे—ऐसे काम करे जिससे संसार में मरने के बाद भी नाम बना रहे।

जो मनुष्य ज्ञान, विक्रम (बहादुरी), कला, कुल-लज्जा, दान और भोग से रहित हैं—जिनमें ये बातें नहीं हैं—क्या उनका जीवन भी अच्छे मनुष्यों के जीवन में गिना जा सकता है? कभी नहीं। ऐसों का जीवन व्यर्थ है।

ऊपर कही हुई ब्राह्मण की सब बातें राजा भोज ने अच्छी तरह सुनीं। उसको इन वाक्यों से ऐसा आनन्द हुआ मानों अमृत से भरे हुए तालाब में उसने ग़ोता लगाया हो। वह परब्रह्म परमात्मा में लीन हुआ साधारण मनुष्य की तरह अपनी आँखों से आनन्द के आँसू टपकाने लगा और बोला कि विप्रवर! सुनो—

संसार में ऐसे मनुष्य बहुत हैं जो सदा प्रिय वचन बोलते हैं; किन्तु जो वचन सुनने में प्रिय न लगे पर जिसका फल हितकारी हो ऐसे वचन के कहने और सुननेवाले मनुष्य कहीं नहीं मिलते।

जो मनुष्य बातें करने में चतुर होते हैं वे हित करनेवाले नहीं होते और जो हित करनेवाले होते हैं वे चिकनी-चुपड़ी

बातें नहीं करते। वे इस बात की कभी पर्वा नहीं करते कि हम इसको मीठी-मीठी बातें बनाकर ख़ुश कर लें; किन्तु वे इस बात का ख़याल रखते हैं कि इसकी भलाई होनी चाहिए, चाहे इस वक़्त इसको हमारे कहने से बुरा ही क्यों न लगे। संसार में ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है जो सच्चा मित्र भी हो और चतुर भी हो; जिस तरह कि ऐसी दवा मिलनी मुश्किल है जो रोगी को आराम भी करे और पीने में मीठी भी हो। अक्सर जो दवा कड़ुवी होती है वही जल्दी आराम करती है।

राजा जब इस तरह कह चुका तब एक लाख रुपया उस पण्डित को दिया और पूछा—आपका नाम क्या है?

ब्राह्मण ने अपना नाम गोविन्द ज़मीन पर लिख दिया। राजा ने उस नाम को पढ़कर कहा—हे ब्राह्मण! तुम रोज़मर्रा राजभवन में आया करो। तुमको कोई न रोकेगा। तुमको हम यह अधिकार देते हैं कि जो विद्वान् एवं कवि हों उन्हें आनन्दपूर्वक सभा में लाया करो; उनका वहाँ सत्कार हुआ करेगा। हम चाहते हैं कि हमारे राज्य में कोई भी विद्वान् दुखी न रहे; विद्वानों को सुख मिलना चाहिए।

मन्त्रियों में से जो कोई मेरे दान को मने करने का विचार करे तो वह मारने योग्य होगा। मैं यह समझता हूँ कि—

जो धनी अपने धन का दान करता है या स्वयं भोग कर लेता है वही धनियों का धन है। बाक़ी तो मरने के बाद उस धनी के धन का दूसरे ही भोग किया करते हैं।

जो दान दिया करता है प्रजा उसी से प्रेम करती है, जो बड़ा धनी है और दान नहीं करता तो उसको कोई नहीं चाहता। लोग मेघ को चाहते हैं, समुद्र को नहीं।

देखो, जो अधिक इकट्ठा करने में लगा रहता है वह समुद्र तो ज़मीन पर पड़ा रहता है और जल का दान करनेवाला मेघ संसार के ऊपर गर्जना किया करता है।

सातवाँ परिच्छेद

कलिङ्ग देश का एक कवि
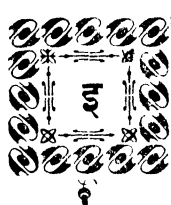
इस तरह जब लोगों को मालूम हुआ कि राजा भोज ख़ूब दान किया करता है तब कलिङ्ग देश से एक कवि आया और एक महीने तक राजा भोज के राज्य में ठहरा रहा, पर राजा के दर्शन नहीं हुए। उसके पास भोजन के लिए ख़र्च भी न रहा। एक दिन राजा अपने महल से शिकार खेलने के वास्ते बाहर निकला तो उसको देखते ही कवि ने कहा—

श्रीभोजराज के दर्शन होते ही शत्रु का शस्त्र ज़मीन पर गिर पड़ता है और कवि का दुख जाता रहता है।

इतना सुनकर राजा भोज उस कवि को एक लाख रुपया देकर शिकार खेलने चले गये। जब राजा शिकार खेलने में दत्तचित्त हो रहे थे तब एक म्लेच्छ जाति का लड़का गीत गाने

लगा। उसका गाना बड़ा मधुर था। उसका गाना सुनते ही राजा बड़े ख़ुश हुए। उसको उन्होंने पाँच लाख रुपये दे दिये।

जिस कवि को राजा ने एक लाख रुपया दिया था उसने देखा कि राजा तो बड़े दानी हैं। कहाँ तो पाँच लाख रुपया और कहाँ यह भील का लड़का! उस समय राजा के हाथ में एक कमल का फूल था। उसी फूल का बहाना करके कवि ने राजा से, एक श्लोक बनाकर, कहा—

> एते हि गुणाः पङ्कज सन्तोऽपि न ते प्रकाशमायान्ति।
> यल्लक्ष्मीवसतेस्तव मधुपैरुपभुज्यते कोशः॥

हे कमल! यद्यपि तू लक्ष्मी का निवास-स्थान है तथापि तुझमें बहुत से गुण होते हुए भी प्रकाशित नहीं होते। क्योंकि तेरे कोश का उपभोग मधुप (भौंरे) करते हैं। राज-पक्ष में मधुप शब्द से मद्यपादि नीच लोगों से अभिप्राय है।

इसका मतलब राजा ने फ़ौरन् समझ लिया कि कवि ने यह हमारे ही ऊपर ढालकर कहा है। उस कवि को फिर भी राजा ने एक लाख रुपया दिया और कहा—

हे कवि! जो समर्थ होते हैं वे कला की ही पूजा किया करते हैं, कुलीनता (अच्छे वंश) की पूजा नहीं करते। देखो, शिवजी ने बहुत से देवताओं के होते हुए भी कलावान् चन्द्रमा को ही अपने सिर पर धारण किया है।

भोज इस तरह कह ही रहा था कि कहीं से पाँच-छः कवि और भी आ गये। उनको देखकर राजा ने अपने मन

में विचार किया कि इतना धन तो मैं अभी हाल में दे चुका हूँ। यह विचारते हुए उसने अपने स्वभाव में और मुँह पर भी कुछ तबदीली की। जो पहला कवि था वह राजा के मन का भाव समझ गया और फिर भी कमल के ही मिस से राजा से कहने लगा—

> किं कुप्यसि कस्मै च न सौरभसाराय कुप्य निजमधुने।
> यस्य कृते शतपत्र प्रतिपत्रं तेऽद्य मृग्यते भ्रमरैः॥

हे शतपत्र (कमल)! तुम किसी पर क्या क्रोध करते हो? क्रोध करना है तो अपने सुगन्धभरे मधु पर करो, जिस मधु के लिए कि भ्रमर आज तेरा पत्ता-पत्ता ढूँढ़ रहे हैं।

इसके बाद कवि ने जब राजा को ख़ुश होता हुआ देखा तब फिर कहा—

जो मनुष्य कंजूस होता है वह अपनी लक्ष्मी का न तो दान कर सकता है और न भोग ही कर सकता है किन्तु उसको सिर्फ़ हाथ से छू लिया करता है।

जो कोई किसी से कुछ लेने के लिए प्रार्थना करे तो वह प्रार्थना करनेवाले से ख़ुश होवे और दान देकर उससे प्रेम करे। ऐसे मनुष्य की जो सुनता है या उसका दर्शन करता है वह स्वर्ग को जाता है।

कवि की बातें सुनकर राजा ने ख़ुश होकर फिर भी उस कवि को एक लाख रुपया दिया। उस कवि ने पीछे से आये हुए पाँच-छः कवियों से कहा कि—यह राजा महासरो-

वर के पुल की भूमि पर रहता है। जब यह घर को जाने लगे तब इससे कुछ कहना। वे कवि लोग राजा के पहले किये हुए सब कामों को तो जानते ही थे सो वे वहीं खड़े हो गये। उनमें से एक कवि सरोवर (तालाब) का बहाना करके, श्लोक बनाकर राजा से बोला—

आगतानामपूर्णानां पूर्णानामपि गच्छताम् ।
यदध्वनि न संघट्टो घटानां तत्सरोवरम् ॥

वह तालाब श्रेष्ठ है जहाँ कि ख़ाली घड़े आते हों तथा भरकर भी जाते हों, और उनका (ख़ाली आनेवालों और भरकर जानेवालों का) मार्ग में संघट्ट (टकराना) न हो। राजा के प्रति यह भाव कि जो निर्धन आता है वह अवश्य धन लेकर ही जाता है—रास्ते में अन्यान्य नये निर्धनों की, पहले से आकर धन ले जानेवालों से कोई तकरार नहीं होती (अन्यथा किसी को धन मिले और किसी को न मिले तो वह परस्पर ईर्ष्या से झगड़ा करने लगे या एक दूसरे से छीनने ही लगे इत्यादि) अतएव तुम श्रेष्ठ हो।

इतना सुनते ही राजा ने उस कवि को एक लाख रुपया दे दिया। फिर गोविन्द कवीश्वर उन बाक़ी कवियों को देखकर नाराज़ होने लगा। एक कवि उसके ग़ुस्से का मतलब समझ गया और कहने लगा—

कस्य तृषं न क्षपयसि पिबति न कस्तव पयः प्रविश्यान्तः ?
यदि सन्मार्गसरोवर नक्रो न क्रोडमधिवसति ॥

हे अच्छे रास्तेवाले सरोवर! अगर तुम्हारी गोद में मगर नहीं रहते तो तुम किसकी प्यास को दूर नहीं करते—कौन तुम्हारे पास पानी पीने नहीं आता—और तुम्हारे भीतर (अन्तःकरण में) घुसके पानी कौन नहीं पीता?

राजा ने उस कवि की बातें सुनकर उसको दो लाख रुपया दिया और गोविन्द पण्डित को उसके पद से अलग करके कहा कि तुम सभा में तो आते रहो परन्तु किसी के साथ दुष्टता मत करना। उसके बाद राजा ने आये हुए सब कवियों को एक-एक लाख रुपया दे दिया। वे सब अपने-अपने घर चले गये। राजा भी अपने घर चला गया। कुछ समय के बाद राजा ने अपने मुख्य मन्त्री को बुलाया और कहा—

विप्रोऽपि यो भवेन्मूर्खः स पुराद् बहिरस्तु मे।
कुम्भकारोऽपि यो विद्वान्स तिष्ठतु पुरे मम॥

मेरे शहर में अगर ब्राह्मण भी मूर्ख रहता हो तो वह शहर से निकल जावे और यदि कुम्हार भी विद्वान् हो तो यहाँ आकर बसे।

यह आज्ञा राजा की थी। सबने इसका पालन किया। धारा नगरी में एक भी मूर्ख न रहा, सब पढ़े-लिखे ही रहने लगे। फिर धीरे-धीरे राजा की सभा में वररुचि, बाण, विनायक और विद्याविनोद आदि पाँच सौ विद्वान् रहने लगे।

आठवाँ परिच्छेद

शंकर कवि

एक दिन राजा भोज कवियों के साथ अपनी सभा में बैठे हुए थे। उस वक़्त द्वारपाल ने आकर प्रणाम किया और कहा कि हे देव! एक विद्वान् दरवाज़े पर खड़ा है। राजा ने हुक्म दिया कि बुलाओ। वह कवि अपना दहिना हाथ ऊपर को उठाये हुए आया और कहने लगा—

हे राजन्! आपका अभ्युदय हो—आपके ऐश्वर्य की वृद्धि हो।

शंकर कवि के पास उस समय लिखा हुआ एक पत्र था। उसको देखकर राजा ने पूछा—हे कवे! इस पत्र में क्या लिखा है?

कवि—श्लोक है।

राजा—किसका है?

कवि—हे भोजराज! आपका ही है।

राजा—इसको अच्छी तरह बाँचिए।

कवि—पढ़ता हूँ—

एतासामरविन्दसुन्दरदृशां द्राक्चामरान्दोलना-
दुद्वेल्लद्भुजवल्लिकङ्कणझणत्कारः क्षणं वार्यताम् ॥

परन्तु ज़रा इन चँवर डुलानेवाली स्त्रियों के कङ्कणों का शब्द बन्द कराइए और पढ़ने लगा—

यथा यथा भोज-यशो विवर्धते;
सितां त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम् ।
तथा तथा मे हृदयं विदूयते;
प्रियालकालीधवलत्वशङ्कया ॥

"हे राजन्! जैसा-जैसा आपका श्वेत—पवित्र—यश बढ़ रहा है वैसे-वैसे मानों वह तीनों लोकों को सफ़ेद किया चाहता है, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है। मुझे यह मालूम करके भी दुःख होता है कि मेरी प्यारी स्त्री की अलकावली भी आपके यश की धवलिमा फैलने से सफ़ेद हो रही है।" मतलब यह कि जब आपके यश से सारा संसार सफ़ेद हो जायगा तब मेरी स्त्री के बाल भी ज़रूर सफ़ेद हो जायँगे!

शंकर कवि के चातुर्य के वचन सुनकर राजा भोज बड़े खुश हुए और उन्होंने उस कवि को बारह लाख रुपये देने का हुक्म दे दिया। जो बाक़ी कवि वहाँ बैठे हुए थे वे इस दान को देखकर दंग रह गये और उनके मुँह की शोभा जाती रही। पर राजा के भय से कोई कुछ बोल न सका। इतने में ही राजा किसी कार्य से अपने घर में चले गये।

उनके चले जाने पर सभा में जितने पण्डित कवि बैठे हुए थे वे सब उसकी (राजा की) बुराई करने लगे। कहने लगे कि देखो राजा की मूर्खता! इसकी सेवा करने से क्या फल होगा! वेद-शास्त्रों के जाननेवाले और सदा अपने पास रहनेवाले कवियों को तो इसने सिर्फ़ एक-एक लाख ही रुपया दिया। इसके अधिक ख़ुश होने से ही क्या है! और यह शंकर कवि तो बिलकुल गाँव का रहनेवाला है, इसकी शक्ति ही क्या है! इस तरह से वे कवि आपस में बातचीत कर चुप हो गये। अब कविशिरोमणि कालिदास आये। उनकी करतूत आगे देखिए।

नवाँ परिच्छेद

कवि कालिदास

एक दिन कालिदास कानों में मणि-जटित सोने के कुण्डल और साफ़ कपड़े पहने सभा में गया। वह राजकुमार की तरह मालूम होता था। उसके शरीर से ख़ुशबू निकल रही थी। वह कामदेव के समान अत्यन्त सुन्दर था। वह कविता-शरीर धारण किये हुए मालूम होता था। उसको देखते ही विद्वानों की सभा चकित हो गई। उसने आते ही सब कवियों को प्रणाम किया और पूछा कि राजा भोज कहाँ हैं। उन्होंने कहा कि राजा महल के भीतर गये हैं। फिर उसने सब कवियों को एक-एक पान दिया और हाथियों के बीच शेर की तरह वह उस सभा में बैठ गया।

थोड़ी देर बैठने के बाद उसने पहले से बैठे हुए कवियों से कहा कि राजा ने जो शङ्कर कवि को बारह लाख रुपये दिये हैं उससे तुमको ग़ुस्सा नहीं करना चाहिए। तुम लोगों ने राजा का मतलब नहीं समझ पाया कि उन्होंने बारह लाख क्यों दिये हैं। मतलब यह है कि शङ्कर (महादेव) का

पूजन आरम्भ करने में शङ्कर कवि को तो एक ही लाख से पूजा है किन्तु वैसी ही निष्ठा रखनेवाले, उसी शङ्कर नाम से प्रसिद्ध, मूर्त्तिमान्, प्रत्यक्ष दूसरे ग्यारह रुद्रों को जानकर और उनमें से हर एक को अलग-अलग एक-एक लाख रुपया देने के लिए राजा ने एक साथ एक ही शङ्कर को दे दिये हैं। यही राजा का अभिप्राय है। कालिदास की बात सुनकर सब कवियों को बड़ा अचम्भा हुआ।

थोड़ी देर के बाद किसी राजकर्मचारी ने जाकर राजा से कहा कि एक बड़ा विद्वान् आया है। राजा उसको महादेव समझकर सभा में आया। बारह लाख रुपये देने का मेरा मतलब इसने कह दिया है, यह जानकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा को देखकर कवि ने कहा कि तुम्हारा कल्याण हो। राजा ने भी उसको प्रणाम किया। हाथ से हाथ मिलाकर उसको वह अपने राजभवन के भीतर ले गया। एक ऊँचे मकान में जाकर दोनों बैठ गये। राजा ने पूछा कि हे कवि! कौन-कौन से अक्षर आपके नाम में सौभाग्य को प्राप्त हो रहे हैं (अर्थात् आपका नाम क्या है)? आपका किस देश से वियोग हुआ (अर्थात् आप कहाँ से आये हैं)? आपके आने से वहाँ के सज्जनों को तो बड़ा दुःख हुआ होगा। फिर कवि ने राजा के हाथ पर अपना नाम 'कालिदास' लिख दिया। कालिदास का नाम बांचते ही राजा उसके चरणों में गिर पड़ा। फिर दोनों को

बैठे-बैठे रात हो गई। राजा ने कहा कि हे मित्र, सन्ध्या का वर्णन करो। कवि कहने लगा—

> व्यसनिन इव विद्या क्षीयते पङ्कजश्री-
> गुणिन इव विदेशे दैन्यमायान्ति भृङ्गाः।
> कुनृपतिरिव लोकं पीडयत्यन्धकारो,
> धनमिव कृपणस्य व्यर्थतामेति चक्षुः॥

जिस तरह किसी दुर्व्यसन में लगे हुए मनुष्य की विद्या नष्ट हो जाती है इसी तरह रात में कमल की शोभा जाती रहती है; जिस तरह गुणी मनुष्य परदेश में ग़रीबी पाते हैं इसी तरह भौंरे रात को दीनभाव—ग़रीबी—पाते हैं; जिस तरह बुरा राजा प्रजा को दुख देता है इसी तरह अँधेरा फैलता जाता है और जिस तरह कन्जूस मनुष्य का धन व्यर्थ होता है इसी तरह रात को आँखें व्यर्थ हो जाती हैं। सन्ध्या ऐसी होती है।

इसके बाद वह राजा की प्रशंसा करने लगा—

> उपचारः कर्तव्यो यावदनुत्पन्नसौहृदाः पुरुषाः।
> उत्पन्नसौहृदानामुपचारः कैतवं भवति॥

जब तक किसी की किसी के साथ मित्रता नहीं हुई तब तक उपचार (= तकल्लुफ़) करना चाहिए। जिनकी परस्पर मित्रता हो गई उनका आपस में तकल्लुफ़ करना मानों ठगी है।

जो राजा कवियों के क्रम को और उनकी बढ़िया काव्य-रचना को समझता है उसने मानों सोने से भरी हुई सारी पृथिवी कवियों को दे डाली।

अच्छे कवि के शब्दों की सुन्दरता एवं उनके भाव को अच्छा कवि ही जान सकता है, दूसरा नहीं। बाँझ स्त्री गर्भवती स्त्री की बातों को क्या समझे।

जब इस तरह से कालिदास ने कहा तब उन दोनों की परस्पर गाढ़ी मैत्री हो गई।

कालिदास कविशिरोमणि तो थे ही। उनकी एक-एक बात बड़ी अनोखी होती थी। उनकी बातों से प्रसन्न होकर राजा भोज ने उनको बहुत सा रुपया दिया। फिर कालिदास ने भोज की प्रशंसा करना शुरू किया—

महाराज श्रीमञ्जगति यशसा ते धवलिते;
पयःपारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते।
कपर्दी कैलासं करिवरमभौमं कुलिशभृ-
त्कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना॥

नीरक्षीरे गृहीत्वा निखिलखगततीर्याति नालीकजन्मा,
तक्रं धृत्वा तु सर्वानटति जलनिधींश्चक्रपाणिर्मुकुन्दः।
सर्वानुत्तुङ्गशैलान्दहति पशुपतिः फालनेत्रेण पश्यन्,
व्याप्ता त्वत्कीर्तिकान्ता त्रिजगति नृपते भोजराज क्षितीन्द्र!

विद्वद्राजशिखामणे तुलयितुं धाता त्वदीयं यशः,
कैलासं च निरीक्ष्य तत्र लघुतां निक्षिप्तवान्पूर्तये।
उक्षाणं तदुपर्युमासहचरं तन्मूर्ध्नि गङ्गाजलं,
तस्याग्रे फणिपुंगवं तदुपरि स्फारं सुधादीधितिम्॥

स्वर्गाद्गोपाल कुत्र व्रजसि सुरमुने भूतले कामधेनो-
र्वत्सस्यानेतुकामस्तृणचयमधुना मुग्धदुग्धं न तस्याः।
श्रुत्वा श्रीभोजराजप्रचुरवितरणं व्रीडशुष्कस्तनी सा;
व्यर्थो हि स्यात्प्रयासस्तदपि तदरिभिश्चर्वितं सर्वमुर्व्याम्॥

हे महाराज श्रीमन्! आपकी कीर्ति इतनी फैल गई है कि सारा संसार सफ़ेद हो रहा है। इसी लिए परम पुरुष विष्णु चीरसागर को ढूँढ़ रहे हैं; महादेवजी कैलाश को ढूँढ़ रहे हैं; राजा इन्द्र ऐरावत हाथी को ढूँढ़ रहा है; राहु चन्द्रमा को ढूँढ़ रहा है और ब्रह्माजी हंस को ढूँढ़ रहे हैं अर्थात् आपकी कीर्ति से सब संसार सफ़ेद दिखाई देता है। ये चीज़ें भी सफ़ेदी में मिलकर खो गई!

हे भोजराज! आपकी कीर्ति-कान्ता तीनों लोकों में व्याप रही है। आपके यश से सब चीजें सफ़ेद हो गई हैं इसलिए ब्रह्माजी तो जल और दूध लेकर सब पचियों के पास जाते हैं अर्थात् हंस की परीचा करते हैं; विष्णु भगवान् मट्ठा लेकर सब समुद्रों के पास फिरते हैं अर्थात् दूध की परीचा करते हैं और महादेवजी अपनी अग्निस्वरूप तेज़ आँखों से देखते हुए सब ऊँचे पर्वतों को जला रहे हैं अर्थात् चाँदी के पर्वत कैलाश की परीचा करते हैं।

कवि कालिदास के वाक्यों को सुनकर राजा भोज बड़ा प्रसन्न हुआ। उसको सुनाये हुए श्लोकों का कालिदास को खूब पुरस्कार मिला। कालिदास को राजा ने अपनी सभा में सर्वोपरि पण्डित मानकर रक्खा।

दसवाँ परिच्छेद

कुछ पण्डित और कालिदास

अब दिन-ब-दिन यह बात अधिक फैलती गई कि राजा भोज को कविता का बड़ा शौक़ है। तब कुछेक कवियों ने परस्पर सलाह की कि नगर से बाहर चलकर भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर में बैठकर कविता करनी चाहिए। वे सब वहाँ गये और कविता करने लगे। उनमें एक पण्डित अभिमानी था। उसने एक श्लोक का चौथा चरण बनाया। दूसरा दूसरे ने पूरा किया। पर श्लोक का आगे का आधा हिस्सा किसी से पूरा न हो सका। इतने में ही मन्दिर में देवी के दर्शन करने को कालिदास गये। उनको देखते ही सब कवि कहने लगे कि हम सब वेद-शास्त्रों के जाननेवाले हैं, फिर भी राजा हमको कुछ भी नहीं

देता। आप जैसों को तो वह यथेष्ट धन दिया करता है। इसलिए हमने विचार किया था कि यहाँ आकर हम भी कविता बनावेंगे। हमने बहुत विचार किया पर अब तक आधा ही श्लोक बन सका है, आधा बाक़ी है सो आधा आप बना दीजिए। पूरा श्लोक हो जाने पर हम राजा को सुनावेंगे जिससे वह हमको कुछ देगा। वे अपने बनाये हुए श्लोक का आधा हिस्सा कालिदास को सुनाने लगे। कालिदास ने आधा श्लोक सुनकर इसके आगे का हिस्सा भी पूरा कर दिया। अब वे लोग राजा के दरवाज़े पर गये और द्वारपालों से कहने लगे कि हम कविता करके लाये हैं, यह कविता राजा को दिखलाओ। वह द्वारपाल आनन्दपूर्वक हँसते हुए राजा के पास जाकर प्रणाम करके कहने लगा—

राजमाषनिभैर्दन्तैः कटिविन्यस्तपाणयः।
द्वारि तिष्ठन्ति राजेन्द्र च्छान्दसाः श्लोकशत्रवः॥

हे राजेन्द्र! राजमाष (लोबिया) के से दाँतोंवाले, अपनी-अपनी कमर पर हाथ रक्खे हुए, श्लोकशत्रु (साहित्यशून्य) शुष्क छान्दस (तुकबन्द) द्वार पर खड़े हैं।

राजा ने उन सबको बुलाया। वे सभा के भीतर गये और मिलने के बाद एक ही साथ अपनी रची हुई कविता को पढ़ने लगे। कविता को सुनते ही राजा ने जान लिया कि इसमें आधा श्लोक इन पण्डितों का बनाया हुआ है और आधा कालिदास का। राजा ने उन सबसे कहा कि जिसने

श्लोक के आगे का आधा हिस्सा बनाया है उसका हम रुपया देते हैं, पहले आधे हिस्से का कुछ नहीं। उन सब कवियों के साथ कवि कालिदास भी वहीं थे। उनको देखकर राजा ने कहा—हे कवे! आगे का आधा हिस्सा तुमने बनाया है? कवि कालिदास ने कहा—

कविता का भाव अनुभवी मनुष्य ही जान सकता है। जिसने कविता के रस का अच्छी तरह अनुभव किया है वही कविता का भाव समझ सकता है।

राजा ने कहा कि हे कवि! तुम ठीक कहते हो।

सरस्वती के काव्यरूपी अमृतफल में अपूर्व रस होता है। इस वाणी का ऐसा अजीब रस होता है कि चखने के समय तो सबको एक सा मालूम पड़ता है, पर इस फल के स्वाद को अच्छी तरह समझनेवाला केवल कवि ही होता है।

जगत् की ओर विचार करते हुए ये दो चीज़ें मेरे हृदय में बस गई हैं—(१) ईख से पैदा होनेवाली शकर, गुड़ आदि चीज़ें और (२) कवियों की बुद्धि।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

कुविन्द जुलाहा

एक दिन द्वारपाल राजा के पास आया और प्रणाम करके बोला कि राजन् ! एक लक्ष्मीधर नामक कवि द्रविड़ देश से आया है। वह दरवाजे पर खड़ा है। राजा ने कहा कि उसको यहाँ सभा में ले आओ। द्वारपाल ने उसको सभा में जाने के वास्ते कहा। वह सूर्य के समान प्रकाशित होता हुआ सभा में गया। वह कवि बड़ा कान्तिमान् और चतुर था। उसको देखकर राजा ने विचारा और कहा—

सिर्फ़ स्वरूप (चेहरा) ही मालूम कर लेने से जो सारी इच्छाओं को पूरा कर देते हैं और मँगतों के दीन वचन नहीं सुनते—अर्थात् उनको धनी बना देते हैं, ऐसे मनुष्य धन्य कहलाते हैं।

इसके बाद उस कवि ने राजा को आशीर्वाद देकर कहा कि हे राजन् ! यह तुम्हारी सभा पण्डितों से शोभायमान हो रही है और तुम विष्णु के समान मालूम पड़ते हो। इसलिए मेरा पाण्डित्य ही क्या है, तो भी कुछ कहता हूँ। वह श्लोक कहने लगा—

भोजप्रतापं तु विधाय धात्रा
शेषैर्निरस्तैः परमाणुभिः किम् ।
हरेः करेऽभूत्पविरम्बरे च
भानुः पयोधेरुदरे कृशानुः ॥

क्या भोज के प्रताप को बनाकर शेष बचे हुए परमाणुओं से ब्रह्मा ने इन्द्र के हाथ में वज्र और आकाश में सूर्य तथा समुद्र में बड़वानल, ये वस्तुएँ (भोज राजा के प्रताप के बनाने से बचे परमाणुओं से) बनाई हैं ? (भाव यह कि हे भोज ! तुम्हारा प्रताप इन्द्र के वज्र, सूर्य और बड़वानल से भी बढ़कर है ।)

कवि की ये बातें सुनकर सभा के मनुष्य चमत्कृत हो गये । राजा भी बड़ा ख़ुश हुआ और लाखों रुपया उसको दे डाला । फिर कवि ने कहा कि देव ! मैं यहाँ पर अपने कुटुम्ब-सहित रहने के विचार से आया हूँ । क्योंकि आप जैसे क्षमावान्, दाता, गुणग्राही स्वामी बड़े पुण्य के प्रताप से मिलते हैं और अनुकूल, पवित्र, चतुर, कवि और विद्वान् स्वामी तो मिलना ही दुर्लभ है ।

इसके बाद राजा ने अपने मुख्य मन्त्री को बुलवाया और कहा कि इस कवि को रहने के लिए घर देना चाहिए । मन्त्री ने सारा नगर देख डाला पर ऐसा एक भी मनुष्य न मिला जो मूर्ख हो और जिसे घर से निकालकर उस कवि को उसके घर में रक्खे । घूमते-घूमते एक जुलाहे का घर मन्त्री को दिखलाई दिया । तब उसको बुलाकर मन्त्री ने कहा कि तू इस घर

से निकल जा, इसमें एक विद्वान् रहेगा। यह बात सुनकर जुलाहा दौड़ा हुआ राजा की सभा में पहुँचा और प्रणाम करके राजा से कहने लगा कि देव! आपका मन्त्री मुझको मूर्ख समझकर घर से निकाल रहा है। अब तू मालूम कर कि मैं मूर्ख हूँ या पढ़ा-लिखा हूँ। उसने कहा—

मैं कविता तो करता हूँ पर अच्छी कविता नहीं कर सकता। अच्छी कविता करता हूँ तो बहुत देर लगती है और बड़ी कोशिश करनी पड़ती है। हे राजाओं के मस्तकमणियों से शोभित चरण आसनवाले उत्तम राजेन्द्र! हे दण्ड देने के विधान जाननेवाले राजन्! मैं कविता करता हूँ और जुलाहे का काम भी करता हूँ; और अब जाता हूँ।

जुलाहे ने राजा के लिए 'तू' इस तरह एकवचन का प्रयोग किया था, इसलिए राजा ने कहा कि अरे जुलाहे! तेरी कविता तो मनोहर है। कविता के पदों का जोड़ भी अच्छा है, तेरी कविता में मधुरता और सुन्दरता दोनों हैं पर विचार करके कविता कहनी चाहिए।

राजा की बात सुनकर कुविंद जुलाहा ग़ुस्से में भरकर कहने लगा कि यहाँ उत्तर तो मेरे पास है पर मैं कहना नहीं चाहता। क्योंकि विद्वान के धर्म से राजधर्म में फ़र्क़ है। राजा ने कहा—अगर तुम्हारे पास जवाब है तो कहो। उसने कहा—हे राजन्! कालिदास के सिवा दूसरे को मैं कवि नहीं समझता। आपकी सभा में कालिदास के सिवा कविता के

मर्म को जाननेवाला दूसरा कवि कौन है! मेरी राय में कोई नहीं।

जो गुरु के कृपारूप अमृत पाक से पैदा हुआ सरस्वती वाणी का ऐश्वर्य है वह कवि को ही मिल सकता है। जो केवल पाठ की प्रतिष्ठा की सेवा करनेवाले हैं उनको नहीं मिल सकता; जिस तरह पवित्र पानी से भरे हुए तालाब में पड़ा हुआ भैंसा कीचड़ ही किया करता है, वह तालाब की सुगन्धि नहीं ले सकता। फिर जुलाहे ने कहा—

बालकपन में पुत्रों को, तारीफ़ करते समय कवियों को और युद्ध करते समय योद्धाओं को, 'तू' शब्द कहना ही अच्छा माना गया है। हे राजन्! तुमको यह 'तू' शब्द क्यों बुरा मालूम हुआ? याद तो करो।

इस पर राजा उस जुलाहे से बड़ा प्रसन्न हो गया और उसको ख़ूब रुपया दिया और कहा कि तुम डरो मत। तुम्हारा कोई कुछ न करेगा। वह आनन्दपूर्वक उसी मकान में बना रहा।

बारहवाँ परिच्छेद

राजा भोज और बाण पण्डित

एक बाण नामक पण्डित था। राजा भोज उसका मान करते थे तथा धनादि से उसकी अच्छी सहायता किया करते थे। इतना होने पर भी वह पण्डित अपने अपूर्वकर्मानुसार सदा ग़रीब ही रहता था। अमीर कभी नहीं बना। एक दिन राजा भोज रात में वेश बदलकर नगर में घूमने को निकले। घूमते-घूमते राजा उसी पण्डित के मकान पर पहुँच गये। उसी वक़्त रात में पण्डित ग़रीबी से घबराकर अपनी स्त्री से कह रहा था कि देवि ! राजा भोज ने तो कई बार मेरी इच्छा पूरी की, अब भी यदि उससे प्रार्थना करूँगा तो ज़रूर कुछ न कुछ देगा पर बार-बार प्रार्थना करने से मूर्ख की भी जिह्वा थक जाती है। बार-बार किसी से माँगा नहीं जाता। इस तरह कहकर वह कुछ देर तक चुप हो रहा। फिर कहने लगा—

हे महादेवजी ! हलाहल विष और किसी से माँगना, इन दोनों में कौन सी बात कठिन है ? इनमें जो अधिक और कम

हो उसको आपकी ही जिह्वा ठीक-ठीक कह सकती है। किसी से माँगना ज़हर से भी अधिक बुरा है। (महादेवजी ने ज़हर भी खाया है और याचना भी की है अतएव महादेवजी से यह बात पूछी गई।) मतलब यह कि—

हे देवि! दरिद्रता की परम मूर्त्ति माँगना है। धन का न होना ही कुछ बड़ा दरिद्र नहीं है। शिवजी कौपीन धारण करते हैं तो भी लोग उनको परमेश्वर मानते हैं और उनकी सेवा करते हैं।

दूसरों की सेवा सुख की जड़ काटनेवाली है। जो किसी की सेवा करता है उसको कभी सुख नहीं मिल सकता। बुरा व्यसन धन की जड़ काटनेवाला है, व्यसनी के पास धन नहीं रह सकता। गुरुओं की जड़ को काटनेवाली याञ्चा—माँगना है। बुरा राजा प्रजा की जड़ को नष्ट करनेवाला होता है। जिस मनुष्य का स्वभाव अच्छा नहीं, जो क्रोधी और दुर्व्यसनी है उसका लड़का कुल की जड़ को काटनेवाला होता है।

इसलिए ग़रीबी होने पर भी मुझसे राजा के आगे कुछ प्रार्थना नहीं हो सकेगी।

क्षणमात्र में आकर चला जानेवाला मेघ सबको अच्छा मालूम होता है और नित्य प्रति अपनी किरणों को फैलानेवाला सूर्य सबको असह्य मालूम पड़ता है। अर्थात् धूप से सब डरते हैं।

हे देवि! यह सब कुछ होते हुए भी जो अभ्यागत—वैश्वदेव के समय—आकर भूखे चले जाते हैं, इससे मेरे मन में बड़ा दुख होता है

दरिद्रतारूपी अग्नि का सन्ताप सन्तोषरूपी जल से शान्त हो सकता है; परन्तु माँगनेवाले की आशा नष्ट होने का अन्तर्दाह कैसे सहा जावे !

बाण पण्डित की ये सब बातें राजा भोज अच्छी तरह सुन रहा था। उसने मन में सोचा कि इस समय पण्डित को मैं कुछ न दूँगा, सबेरे इसका अच्छी तरह सत्कार करूँगा। यह सोच-विचारकर राजा वहाँ से चल दिया।

जिस कविता से मूर्ख मनुष्य चतुर नहीं बन जाते, जिस बली ने बुरे व्यसनवाले को ठीक रास्ते पर नहीं पहुँचाया और जिस धनी ने अपने धन से माँगनेवाले को अपने समान धनी नहीं बना दिया उस कविता, बल और धन से क्या हुआ—अर्थात् कुछ नहीं।

इस तरह विचारता हुआ राजा घूम ही रहा था कि रास्ते में दो चोर जाते हुए मिले। उनमें से एक शकुन्तक नाम का चोर दूसरे मराल चोर से कहने लगा कि भाई ! इस समय रात है और बड़ा अँधेरा हो रहा है तो भी मैं सिद्ध अंजन के कारण संसार की छोटी से छोटी सब चीज़ों को देख रहा हूँ। मैं देखता हूँ कि जो मैं यह ख़ज़ाने से सोना आदि धन लाया हूँ यह भी मुझको सुख देनेवाला नहीं है। फिर शकुन्तक कहने लगा कि चारों ओर रक्षा करनेवाले सिपाही घूम रहे हैं, और अगर तुरही और ढोल आदि की आवाज़ हुई तो जाग जावेंगे। इसलिए अच्छा हो कि चुराये हुए धन को

बाँट लो और अपने-अपने हिस्से में आये हुए धन को लेकर जल्दी चल देना चाहिए। मराल ने कहा, हे मित्र! यह धन दो करोड़ है, तुम इसका क्या करोगे? शकुन्तक ने कहा—यह धन मैं किसी विद्वान् ब्राह्मण को दूँगा, जिससे वह वेद-वेदाङ्ग का जाननेवाला ब्राह्मण किसी दूसरे से न माँगे। मराल ने कहा कि यह आपका विचार बहुत अच्छा है।

दान करते हुए, युद्ध करते हुए और किसी किताब का पाठ करते हुए यदि रूँगटे खड़े हो जावें तो असली दान और पुरुषार्थ यही है।

मराल ने फिर कहा कि इस धन का दान करने से तुमको पुण्य-फल कैसे मिल सकता है? यह धन तो चोरी का है। शकुन्तक ने कहा कि चोरी करके धन इकट्ठा करना तो हमारा कुल-परम्परा का धर्म है। मराल ने कहा, यह समझकर कि अगर सिर कट जावे तो भी परवा नहीं पर धन चुराना चाहिए, इस तरह बड़े दुख उठाकर तुमने इस धन को इकट्ठा किया है। यह धन तुमसे किस तरह दिया जावेगा?

शकुन्तक ने कहा—मूर्ख मनुष्य ग़रीब हो जाने के डर से अपने धन का कभी दान नहीं करता और जो बुद्धिमान् होता है वह ग़रीबी आने पर सब धन नष्ट हो जाने के डर से धन का दान सदैव करता रहता है। इसलिए दान करना ही अच्छा है।

इस तरह दोनों के संवाद को सुनकर राजा बड़ा ख़ुश हुआ।

तेरहवाँ परिच्छेद

सुख, मन्त्री और एक चोर

मन्त्रियों ने जब देखा कि राजा बेतरह रुपया खर्च कर रहा है तब एक दिन राजा के सोने के स्थान पर एक मन्त्रो कागज़ पर श्लोक का चौथा चरण लिखकर खाट से चिपका आया कि—"आपदर्थे धनं रक्षेत्"—आपत्ति के समय के लिए मनुष्य को धन की रक्षा करनी चाहिए। जब राजा सोकर उठा तब उसने खाट में एक कागज़ चिपका हुआ देखा। उसको पढ़कर वह हँसने लगा। फिर उसी कागज़ पर उसने श्लोक का दूसरा चरण लिख दिया कि "श्रीमतामापदः कुतः" अर्थात् श्रीमानों को आपत्ति कहाँ? धनिकों को आपत्ति हुआ करती है।

दूसरे दिन उस मन्त्री ने उस लिखे हुए वाक्य को पढ़ा और श्लोक का तीसरा चरण लिख दिया "सा चेदपगता लक्ष्मीः" यदि वह लक्ष्मी चली जावे तब क्या हो?

जब राजा ने फिर इस वाक्य को लिखा देखा तब उसने श्लोक का शेष चौथा चरण लिख दिया कि "संचितार्थो विनश्यति" अर्थात् इकट्ठा किया हुआ धन भी तो नष्ट हो जाता है।

जिस मन्त्री ने लिखकर काग़ज़ चिपका दिया था उसने जब राजा के लिखे हुए चौथे वाक्य को पढ़ा तब उसको चेत हुआ। वह समझ गया कि राजा का विचार सच्चा है। धन की गति चञ्चल है, वह एक जगह कभी नहीं रहता। फिर मन्त्री राजा के सामने आकर हाथ जोड़ कहने लगा—हे राजन्! वह काम मैंने ही किया था, मेरा अपराध क्षमा कीजिए।

इसके बाद राजा अपना काम-काज करके अपने महल में सो गया। इसी रात में एक चोर सुरंग लगाकर राजा के सोने के मकान में चोरी करने आया। वहाँ उसको बहुत से रत्नजटित ज़ेवर आदि मिल गये। माल लेकर चोर जाना ही चाहता था कि राजा की आँख खुल गई। राजा जागकर एक श्लोक के तीन चरण बनाकर बार-बार कहने लगा, जिसका मतलब यह था—

"मेरे चित्त को हरनेवाली मेरी स्त्रियाँ हैं, मित्र भी मेरे अनुकूल हैं, मेरे भाई-बन्धु सज्जन हैं, मेरे सेवक नम्रतापूर्वक बोलते हैं, मेरे हाथी गर्जनेवाले और घोड़े चञ्चल हैं।" इस तरह वह अपने सुख का वर्णन कर रहा था। इसके आगे का श्लोक का चौथा चरण राजा से न बनता था। श्लोक पूरा करने के लिए वह बार-बार उन्हीं पदों को दुहराने लगा। चोर भी सुन रहा था। उसने चौथा चरण बनाकर कह दिया—"सम्मीलने नयनयोर्नहि किञ्चिदस्ति।" हे राजन्!

जब आँखें मिच जाती हैं, मनुष्य मर जाता है, तब कुछ भी नहीं रहता। सब यहीं पड़ा रह जाता है।

इस वाक्य को सुनकर राजा आश्चर्य करने लगा कि इस समय यह मनुष्य यहाँ कहाँ से आया। राजा उठकर उसकी ओर चला। वह हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे राजन् ! मैं चोर हूँ, मुझे क्षमा कीजिए।

उसका बनाया हुआ वाक्य सुनकर राजा पहले से ही ख़ुश हो रहा था। उसने उसको सब चुराया हुआ माल देकर सन्तुष्ट किया। चोर वहाँ से चला गया।

चौदहवाँ परिच्छेद

लड़के का जलना

एक दिन राजा भोज रात को वेश बदलकर अपने नगर का हाल देखने के लिए निकले। इधर-उधर घूमते हुए वे एक ब्राह्मण के घर जा खड़े हो गये। वहाँ देखा कि ब्राह्मण की स्त्री अपने पति की सेवा में लगी हुई है। पति उसकी गोद में सिर रक्खे सो रहा है और उसका लड़का जलती हुई आग में गिर पड़ा है। वह लड़का आग में पड़ा हुआ ही हँस रहा है और बातें कर रहा है। उसको आग ने बिलकुल नहीं सताया। लड़के की माता पतिव्रता थी। उसने अपने लड़के का उस समय कुछ भी ख़याल न किया; पति को नहीं जगाया। यह हाल देखकर राजा अपने मकान पर चले गये। दूसरे दिन राजा ने श्लोक का एक चरण बनाकर कहा—"हुताशनश्चन्दनपंकशीतलः"—आग चन्दन के समान ठण्डी है। यह सुनकर सब पण्डितों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसे हो सकता है। परन्तु कालिदास ने पूरा श्लोक बनाकर उत्तर दिया—

सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके,
न बोधयामास पतिं पतिव्रता ।
तदाभवत्तत्पतिभक्तिगौरवा-
द्धुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः ॥

पुत्र आग में गिर पड़ा है पर वह पतिव्रता स्त्री अपना काम छोड़कर उसको आग में से नहीं निकालती । फिर भी उसके पुत्र को कुछ कष्ट नहीं हुआ । आग को पतिव्रता का डर था इसलिए वह चन्दन की तरह ठण्डी हो गई ।

यह सुनकर राजा भोज अपने मन में विचार करने लगा कि इस काम को तो मैंने ही देखा था । दूसरा मनुष्य वहाँ कोई नहीं था । इस कालिदास ने ज्यों का त्यों हाल कह दिया । यह बड़ा बुद्धिमान् और विचारशील है ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

दरिद्रता का नाश

एक ब्राह्मण बड़ा ग़रीब था। वह पढ़ा-लिखा भी थोड़ा ही था। अपना पेट पालने के लिए वह बड़ी मेहनत किया करता था। राजा भोज का यश उसने सुन ही रक्खा था। एक दिन उसने धारा नगरी को जाने का पक्का विचार किया। उसने मन में विचार किया कि राजा के पास जाना तो चाहिए पर राजा की भेंट के लिए कुछ ज़रूर चाहिए। क्योंकि राजा, गुरु, ज्योतिषी, वैद्य और मित्र के घर जाने पर कुछ भेंट ज़रूर ले जानी चाहिए। यह सोचकर कुछ भेंट ले जाने का ब्राह्मण ने पक्का विचार कर लिया। अब वह सोचने लगा कि क्या ले जाना ठीक है। वह स्वयं तो बहुत ग़रीब था। रुपया ख़र्च करने की शक्ति थी नहीं। इससे विचार करते-करते उसने निश्चय किया कि कोई खाने की चीज़ लेता चलूँ तो अच्छा है। वह कहीं से ईख के कुछ टुकड़े ले आया और उनको एक फटे कपडे में बाँधकर धारा नगरी को चल दिया। वह दूसरे दिन वहाँ पहुँच गया।

राजा भोज की सभा के स्थान में वह जाकर ठहर गया। मार्ग चलते-चलते वह बहुत थक गया था इससे नींद आने लगी। वहाँ जो मनुष्य थे उनसे उसने पूछा कि भाई! मैं यहाँ सो जाऊँ? और कृपा करके यह ख़याल रखना कि जब सभा में सब मनुष्य आ जावें तब मुझे जगा देना। वहाँ के मनुष्यों ने कह दिया कि सो जाओ। सोते समय वह अपने ईख के टुकड़ों को सिर के नीचे रखकर सो गया। उसके सो जाने पर वहाँ के मनुष्यों ने उसके सिर के नीचे से ईख के टुकड़ों की पोटली निकालने का विचार किया। धीरे से पोटली निकालकर उन्होंने उस पोटली में से वे टुकड़े तो निकाल लिये और लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े पोटली में बांध दिये। फिर वह पोटली वहीं सिर के नीचे रख दी।

जब सभा मनुष्यों से भर गई तब एक मनुष्य ने उसको जगा दिया। वह घबराकर उठा और अपनी पोटली लेकर सभा में पहुँचा। उसने सबके देखते हुए वह पोटली राजा भोज के सामने खोल दी। वह तो यही समझता था कि इसमें ईख के टुकड़े हैं पर पोटली के खुलते ही उसमें से लकड़ी के टुकड़े निकले। लकड़ी के टुकड़े देखकर सब लोग अचम्भा करने लगे कि यह क्या! राजा भोज भी अपने सामने लकड़ी के टुकड़े देखकर ग़ुस्सा करने लगा। ईख के टुकड़ों की जगह लकड़ी के टुकड़े राजा के सामने देखकर वह ब्राह्मण भी डर गया। राजा के मन का विचार और ब्राह्मण को डरता हुआ देखकर कालिदास

कहने लगा कि महाराज ! इस ब्राह्मण का लकड़ी के टुकड़े आपके पास रखने का यह मतलब है—

दग्धं खाण्डवमर्जुनेन बलिना रम्यद्रुमैर्भूषितं
दग्धा वायुसुतेन हेमनगरी लंका पुनः स्वर्णभूः ।
दग्धो लोकसुखो हरेण मदनः किं तेन युक्तं कृतं
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनापि दग्धं न हि ॥

अच्छे-अच्छे वृत्तों से शोभायमान खाण्डव वन को, आग लगाकर, अर्जुन ने जला दिया। सुवर्ण की लंका जो सब रत्नों से भरी हुई थी उसको हनूमान् ने भस्म कर दिया। सर्वप्रिय कामदेव को महादेवजी ने जला दिया। परन्तु जो सबको दुख देनेवाली ग़रीबी है उसको आज तक किसी ने भस्म नहीं किया। इस ब्राह्मण का यह मतलब है कि इन लकड़ो के टुकड़ों से मेरी दरिद्रता भस्म कीजिए।

कालिदास की बुद्धिमत्ता को धन्य है ! उनके कहने से राजा का क्रोध बिलकुल जाता रहा। उसने ख़ुशी से उस ब्राह्मण को ख़ूब रुपया दिया। जब ब्राह्मण को रुपये मिल गये तब वह पीछे की ओर देखने लगा। राजा पूछने लगा कि अरे ब्राह्मण ! तूने पीछे की ओर क्यों देखा ? उसने कहा कि महाराज ! मैं पीछे इसलिए देखने लगा हूँ कि बहुत दिन से मेरे पीछे ग़रीबी लगी हुई है वह आपसे पाये हुए रुपयों के मिलने से दूर हुई कि नहीं। ब्राह्मण की बात सुनकर सब लोग हँसने लगे।

सोलहवाँ परिच्छेद

फूलों की परीक्षा

एक दिन राजा भोज ने अपने मन में विचार किया कि हमारी सभा में पण्डित बहुत हैं। ये भी अत्यन्त चतुर हैं। आज मैं इनकी चतुरता की परीक्षा करना चाहता हूँ। यह विचार कर राजा ने एक माली को बुलवाया और उससे कहा कि तुम एक नक़ली फूलों का हार बना लाओ। उसने घर जाकर नक़ली फूलों का हार बना लिया और वह राजा के पास लाया। वह हार देखने में बिलकुल असली ही मालूम होता था। जो कोई उसको देखता, यही कहता था कि असली हार है। राजा ने नक़ली हार देखकर माली से कहा कि एक दूसरा हार असली फूलों का भी बना लाओ। वह असली हार भी बना लाया। अब दोनों हारों में कोई फ़र्क़ मालूम नहीं पड़ता था। देखने से कोई यह नहीं कह सकता था कि असली कौन है और नक़ली कौन है। जब तक कोई उन हारों को हाथ

में न ले तब तक दूर से असली और नक़ली बता देना बड़ी चतुरता का काम था। कोई नहीं बता सकता था।

सभा में जब सब पण्डित इकट्ठे हो गये तब राजा भोज ने अपने एक नौकर को आज्ञा दी कि दोनों हार हाथ में लेकर सभा में खड़ा हो जा। वह उन दोनों हारों को हाथ में लेकर खड़ा हो गया। राजा ने सभा के सब पण्डितों से कहा कि देखो ये दो हार हैं, इनमें एक तो असली है और एक नक़ली। आप लोग बिना हाथ से छुए बतलाइए कि कौन सा हार असली फूलों का है और कौन सा नक़ली ?

उन हारों को देखकर सब चकित हो गये। दोनों हार एक से ही मालूम होते थे। उनमें असली और नक़ली का भेद बता देना मुश्किल काम था। कोई न बता सका। थोड़ी देर बाद कवि-शिरोमणि कालिदास ने कहा कि राजन् ! यहाँ अँधेरा है, मुझे हार ठीक ठीक दिखलाई नहीं देते। यदि आप इस मनुष्य को बाहर खड़ा होने की आज्ञा दें तो मैं देखकर बतला सकता हूँ कि कौन सा हार असली है और कौन सा नक़ली।

राजा भोज की समझ में उस समय कालिदास की चतुराई का कुछ भी ख़याल न हुआ। उसने नौकर को आज्ञा दे दी कि तुम बाहर प्रकाश में खड़े हो जाओ। बाहर होते ही मधुलोलुप मक्खियाँ असली फूलों के हार पर बैठने लगीं और नक़ली हार पर एक भी न बैठी। यह देखते ही कालिदास ने

कह दिया कि राजन् ! देखिए, जिस हार पर मक्खियाँ बैठी हुई हैं वह असली हार है और जिस पर एक भी मक्खी नहीं है वह नक़ली है।

कालिदास की इस चतुरता की राजा ने और सभा में बैठनेवाले सभी मनुष्यों ने प्रशंसा की। राजा भोज ने यह काम हँसी के लिए किया था। वह कालिदास की प्रशंसा करता हुआ बड़ा ख़ुश हुआ।

सत्रहवाँ परिच्छेद

एक ब्राह्मणी

एक दिन राजा भोज अपने सिंहासन पर बैठे हुए थे। द्वारपाल आया और राजा को दण्डवत् करके कहने लगा कि महाराज एक विदुषी ब्राह्मणी आई है। वह आपके दर्शन करना चाहती है। राजा ने आज्ञा दी कि आने दो। जब ब्राह्मणी राजदरबार में पहुँची तब राजा ने ब्राह्मणी को प्रणाम किया और उसने राजा को आसीर्वाद दिया। आशीर्वाद हो जाने के बाद वह अपना बनाया हुआ एक श्लोक पढ़ने लगी। उस श्लोक का तात्पर्य यह था—

हे राजा भोज! आपके प्रताप को धन्य है। आपके प्रताप का अपूर्व अग्नि पर्वतों के कटक स्थानों में जाग रहा है।

उस प्रतापरूप अग्नि के प्रवेश करने से आपके सब शत्रु-राजाओं के घरों के आँगनों में तिनके जम गये हैं। अर्थात् आपका प्रताप ऐसा है जिससे सब शत्रु नष्ट हो गये, उनके मकान ख़ाली पड़े हैं। मकान में कोई भी रहनेवाला नहीं है। जब मकान में कोई नहीं रहता तब घास जम जाती है।

वृद्धा ब्राह्मणी का श्लोक सुनकर राजा बड़ा ख़ुश हुआ। उसने उस ब्राह्मणी को एक अशर्फ़ियों का भरा हुआ कलश दिया। फिर ख़ज़ानची ने धर्मपत्र लिख दिया कि राजा भोज ने इस वृद्ध ब्राह्मणी को, प्रताप की स्तुति करने पर ख़ुश होकर, राजसभा में सुवर्णमणियों से भरा हुआ यह घड़ा दिया है।

राजा भोज के समय में स्त्रियाँ भी बड़ी विदुषी थीं। स्त्रियाँ भी विद्या पढ़-लिखकर अपनी सन्तान को अच्छी तरह सुधारती थीं। स्त्रियों के पढ़े-लिखे बिना देश का कल्याण होना असम्भव है।

अठारहवाँ परिच्छेद

कवि कालिदास का अनादर

राजा भोज की सभा में जितने कवि रहते थे उन सबमें राजा भोज कालिदास को सबसे अच्छा समझते थे; वे उसी से अधिक प्रीति भी करते थे। एक बार ऐसा हुआ कि भोज किसी विशेष दुर्व्यसन के कारण कालिदास से नाराज़ हो गये। उनके मन में विचार हुआ कि किसी भी मनुष्य को, और विशेषतया विद्वान् को, कभी किसी दुर्व्यसन में न फँसना चाहिए। इससे धीरे-धीरे कालिदास से भोज ने उदासीनता प्रकट करनी शुरू कर दी। उनके पास के बैठने-उठनेवालों को भी मालूम हो गया कि राजा भोज कालिदास से उदासीनता करने लगे हैं। उन्होंने कहा—

गुणी मनुष्यों में किसी तरह की बुराई देखकर भी गुणों से प्रीति रखनेवाले मनुष्य को दुख नहीं मानना चाहिए। गुणग्राही को चाहिए कि वह उसके गुणों का ख़याल करे; बुराई कभी न देखे। जिस तरह कलङ्कयुक्त होने पर भी चन्द्रमा को समस्त संसार प्रीतिपूर्वक ही देखता है।

इस तरह समझाने-बुझाने पर भी राजा भोज कालिदास की ओर से सन्तुष्ट न हुए; उनकी पूर्व की सी प्रीति न हुई। होते-होते कालिदास को भी राजा का मतलब मालूम हो गया। वह भी समझ गया कि राजा मुझसे नाराज़ रहते हैं।

एक दिन कालिदास ने तराजू का बहाना करके राजा के सामने यह श्लोक पढ़ा—

प्राप्य प्रमाणपदवीं को नामास्ते तुलेऽवलेपस्ते।
नयसि गरिष्ठमधस्तात्तदितरमुच्चैस्तरां कुरुषे॥

हे तराजू! प्रमाण—माप—(मान) का दरजा पाकर तुझे घमण्ड क्यों है? तू गरिष्ठ अर्थात् बड़े (भारी) को नीचे कर देती है; तेरा वज़नी पलरा नीचे हो जाता है और हलका ऊपर को उठ जाता है।

इसके बाद दूसरा श्लोक कहा—

यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात्
स्वदेशरागेण हि याति खेदम्।
तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति॥

अर्थात् जिसकी सब जगह गति है, जो सब जगह जा-आ सकता है वह अपने देश में प्रीति करके दुख क्यों पाता है! यह कुआ हमारे पिता का बनवाया हुआ है—इस तरह कहकर कायर मनुष्य उसका खारी पानी पीते रहते हैं। बुद्धिमान् ऐसा काम कभी नहीं कर सकता।

इसके बाद कालिदास अच्छी तरह समझ गया कि राजा हमसे ज़रूर नाराज़ हैं। हमारा तिरस्कार करते हैं। यह विचारकर वह उदास होकर अपने घर चला गया। क्योंकि—

तिरस्कार करने से जिसका प्रेम घट जाता है उस प्रेम को फिर पूरा कौन कर सकता है? जो मोती एक बार टूट गया वह फिर लाख का लेप करने से जुड़ नहीं सकता।

परस्पर प्रेम न रहने से और कालिदास की उदासीनता जानकर राजा भोज के मन में भी दुख हुआ। वह भी उदासीन रहने लगा।

एक दिन रानी लीलावती ने राजा भोज को उदासीन देखकर पूछा कि आप उदास क्यों रहते हैं? भोज ने अपना और कालिदास-सम्बन्धी सब हाल कह सुनाया। हाल सुनते ही रानी समझ गई कि राजा कालिदास का तिरस्कार करते हैं। उसने कहा—हे देव! प्राणनाथ! आप सर्वज्ञ हैं; आप सब कुछ जानते-समझते हैं तो भी सुनिए—

स्नेहो हि परमघटितो न वरं संजातविघटितस्नेहः।
हृतनयनो हि विषादी न विषादी भवति जात्यन्धः॥

संसार में किसी से भी प्रेम न करना अच्छा है। यदि किसी से प्रेम (मित्रता) हो जाय तो फिर उससे तोड़ना अच्छा नहीं। जिसकी आँखें नष्ट हो जाती हैं, दिखाई नहीं देता तो उसे बड़ा दुख होता है। अगर वह जन्म से ही अन्धा है तो उसे कुछ भी दुख नहीं होता।

कालिदास सरस्वती का अवतार है। सब तरह से इससे प्रेम करो। ऐसा उपाय करो जिससे यह फिर आपसे प्रेम करने लगे। देखो—

चन्द्रमा दोषाकर—क्षपाकर—कुटिल है अर्थात् टेढ़ा है; उसमें कलंक भी है; और वह अपने मित्र के अन्त समय अर्थात् सूर्य के छिप जाने पर उदय होता है। ऐसा होते हुए भी वह शिवजी का प्रिय है। अपने शरण में अर्थात् अपने पास रहनेवालों के गुण-दोषों का विचार न करना चाहिए।

रानी लीलावती के समझाने से भोज की बुद्धि ने पलटा खाया। उसने कहा कि तुम जो कुछ कहती हो सब ठीक है। मैं कल सबेरे ही कालिदास को ख़ुश करने का उपाय करूँगा।

प्रातःकाल होते ही राजा अपने ज़रूरी कामों से निपटकर सभा में गये। उस वक़्त पण्डित, कवि और गवैये आदि सब लोग सभा में आये पर कवि कालिदास न आये। उनको न देखकर राजा ने अपने एक नौकर को हुक्म दिया कि कवि कालिदास को बुला लाओ। वह गया और कालिदास को प्रणाम करके कहने लगा कि हे कवीन्द्र! राजा भोज आपको बुलाते हैं। कवि को चिन्ता हुई कि राजा ने कई दिन हुए तब तो मेरा तिरस्कार किया था, अब वे मुझे सबेरे ही क्यों बुलाते हैं। सच है—

राजा की सभा में जो-जो मनुष्य उसका परम प्रिय है, राजा का जिस पर प्रेम है, पास रहनेवाले उसी-उसी मनुष्य

को उखाड़ने का प्रयत्न करते हैं। वे चाहते हैं कि राजा के परम प्रिय मनुष्य न रहने पावें।

राजा भोज की मेरे साथ बड़ी प्रीति थी, इसी से मेरा मान भी बढ़ता जाता था। वह कुटिल मनुष्य को असह्य हुआ। इसी से ईर्ष्या करके लोगों ने मुझमें और राजा में वैर का अंकुर बो दिया।

जो राजा ज्ञानी नहीं होता, जो अच्छी तरह समझता नहीं वह चतुर मन्त्रियों के वश में रहता है। और जिस राजा के पास दुष्ट मनुष्यों का ज़ोर होता है वहाँ किसी बात के लिए सज्जनों को अवसर कैसे मिल सकता है? वहाँ सज्जन किसी सूरत में नहीं रह सकता।

इस तरह विचार करते हुए कालिदास सभा में आये। उनको आते देखकर राजा को बड़ी ख़ुशी हुई। वे आसन से उठ खड़े हुए और कहा कि सुकवे! आपने आज इतनी देर क्यों की? इस तरह कहते हुए भोज आगे बढ़े अर्थात् उनकी पेशवाई की। राजा को देखकर सभा में जितने मनुष्य बैठे थे वे भी उठ खड़े हुए और यह हाल देखकर उनको आश्चर्य हुआ। जो लोग कालिदास के विरोधी थे उनको तो बड़ा ही दुख हुआ।

राजा कालिदास के हाथ में हाथ डालकर अपने सिंहासन की जगह लिवा लाये। उनको उसी सिंहासन पर बिठा दिया और उनकी आज्ञा पाकर ख़ुद भी वहीं बैठ गये।

इस तरह कालिदास की प्रतिष्ठा होते हुए देखकर कुछ लोगों के मन में बड़ी ईर्ष्या हुई। वे कालिदास की प्रतिष्ठा न देख सके। वे परस्पर मिलकर ऐसा उपाय सोचने लगे जिससे राजा में और कालिदास में फिर भी अनबन हो जावे। होते-होते उन लोगों ने एक ऐसा निकृष्ट उपाय सोचा जिससे राजा में और कालिदास में अनबन करा ही दी। राजा उनसे बड़े नाराज़ हो गये। यहाँ तक कि उन्होंने कालिदास से कह दिया कि तुम हमारे राज्य में न रहो; कहीं बाहर चले जाओ। साथ ही यह भी कह दिया कि हम जवाब कुछ नहीं चाहते।

कालिदास वहां से चल दिये और विचारने लगे—

> अघटितघटितं घटयति सुघटितघटितानि दुर्घटीकुरुते।
> विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति॥

अर्थात् अघटितघटनापटु भगवान् अनहोनी बातों को होनहार कर देता है और होनहार बातों को अनहोनी कर देता है। मनुष्य जिस बात को कभी नहीं सोचता या विचारता कि यह बात होगी वही सामने आ जाती है।

मालूम होता है, यह सब कृत्य मेरे दुश्मनों का किया हुआ है। सच है—थोड़ा सार रखनेवाले बहुतों का इकट्ठा होना भी मज़बूत बन जाता है। तिनकों से रस्सी बनाई जाती है फिर उसी रस्सी से हाथी बाँधे जाते हैं।

जब कालिदास देश से निकल गया तब रानी लीलावती ने भी सुना। उसने राजा से कहा—हे देव! कवि कालि-

दास के साथ तो आपकी बड़ी मित्रता थी। अब उनसे क्यों बिगड़ गई? ऐसा क्या सबब हुआ जिससे आपने उनको देश से भी निकाल दिया? देखो—

जिस तरह ईख के आगे के हिस्से के नीचे क्रमपूर्वक रस बढ़ता जाता है, गन्ने के नीचे के हिस्से में रस अधिक होता जाता है, उसी तरह सज्जनों की प्रीति बढ़ती जाती है। दुष्ट मनुष्यों की प्रीति इसके विपरीत होती है अर्थात् घटती जाती है।

शोकरूपी शत्रु से रक्षा करनेवाला, प्रीति और विश्वास का पात्र ऐसा 'मित्र' यह दो अक्षर का शब्दरूपी रत्न किसने बनाया है! मतलब यह कि यह 'मित्र' रूपी रत्न सब रत्नों से बड़ा है।

लीलावती की बातें सुनकर राजा भोज ने कालिदास के विरुद्ध जो कुछ बातें थीं वे सब कह सुनाईं। राजा की बातें सुनकर लीलावती को बड़ा दुःख और आश्चर्य हुआ। उसने ईश्वर को साक्षिरूप बनाकर कालिदास की ओर से राजा का मन बिलकुल शुद्ध कर दिया। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि कालिदास निर्दोष हैं।

अब भोज के मन में बड़ी चिन्ता हुई। वे रात-दिन सुस्त रहने लगे। न किसी से बोलते और न किसी से बातचीत करते। वे रात-दिन विलाप करते हुए कहते थे कि मुझमें लज्जा क्या है, मुझमें चतुराई क्या है, मुझमें गम्भीरपन क्या है अर्थात् कुछ नहीं। वे कालिदास के लिए पछताते हुए कहते थे—हा कवियों के मुकुट के मणिरूप कालिदास! हा मेरे प्राण-

प्रिय ! मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अनर्थ किया। जो बात तुमसे कभी न कहनी चाहिए थी सो कही। मैंने तुम्हारा बड़ा अनादर किया, तुम सर्वथा निर्दोष हो और मैं सदोष हूँ; मैं ही अपराधी हूँ, जो तुमको मैंने इतना कष्ट दिया। इस तरह कालिदास के लिए विलाप करते हुए वे बड़े दुखी रहने लगे।

राजा भोज जब अपनी सभा में जाते तब बिना कालिदास के सभा में कुछ भी न मालूम होता था। उन्हें वह सभा ऐसी मालूम होती थी जैसे बिना चन्द्रमा के रात हो। उस सभा में ऐसा एक भी मनुष्य न था जिसकी कविता राजा भोज के मन को ख़ुश करनेवाली हो।

एक दिन राजा भोज बैठे हुए थे। रात का समय था। चाँदनी खिल रही थी। उस चन्द्रिका को देखकर राजा अपने मन में बड़े ख़ुश हुए। रानी लीलावती के मुँह के समान प्रकाशमान चन्द्रमा को देखकर उन्होंने उसी समय एक आधी कविता की जिसका मतलब यह है—"यह चन्द्रमा मेरी रानी लीलावती के मुँहरूपी चन्द्रमा की बराबरी करता है" इतना कहकर वे सो गये। जब सबेरा हुआ तब वे सोते से उठे और उठकर, नित्य कर्म करने के बाद, अपनी सभा में गये। वहाँ जाकर सब कवियों को बुलाया और उनसे कहा—

तुलणं अणु अणुसरइ ग्लौसो मुहचन्दस्स खु एदाए।

यह मेरी समस्या है। यदि आप इसको पूरा कर दें तो अच्छा है। अगर यह समस्या पूरी न हुई तो आप लोग मेरे

देश में नहीं रह सकते। या तो समस्या पूरी कीजिए या देश छोड़कर चले जाइए।

उस वक़्त तो सब कवि अपने-अपने घर चले गये। फिर सब कई दिन तक विचार करते रहे पर किसी से भी समस्या न बन सकी। जब एक से भी पूरी कविता न बन सकी और कई दिन बीत गये तब वे इकट्ठे होकर सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। अन्त में यह निश्चय हुआ कि राजा के पास बाण पण्डित को भेजकर कुछ अवधि माँगनी चाहिए। ऐसा ही हुआ। बाण पण्डित राजा के पास गया और उनसे कहा कि हे राजन्! सब कवियों ने मिलकर मुझे आपकी सेवा में भेजा है कि आप समस्या पूरी करने के लिए आठ दिन की अवधि दीजिए। राजा ने कहा अच्छा, अगर आठ दिन में समस्या पूरी न हुई तो सब कवियों को देश छोड़ देना होगा। बाण कवि ने आकर राजा की स्वीकृति सब कवियों को सुना दी। इसके बाद सब अपने-अपने घर चले गये। होते-होते आठ दिन भी बीत गये पर कविता कोई भी पूरी न कर सका। आठवें दिन की रात को सब कवि इकट्ठे हुए। उस वक़्त बाण कवि ने कहा कि आपही लोगों ने अपने घमण्ड से, राजसम्मान के घमण्ड से और कुछ विद्या के घमण्ड से, कविशिरोमणि कालिदास को यहाँ से निकलवा दिया। साधारण रूप से आप लोग सभी कवि और पण्डित हैं, साधारण कविता सब कर सकते हैं पर विषम—कठिन—कविता करने में तो वही एक

कवि कालिदास समर्थ हैं। उनके बिना कठिन समस्या की पूर्ति कौन कर सकता है? उनको तो आपने निकाल दिया। अब आप लोगों का क्या बड़प्पन रह गया! यदि इस वक्त यहाँ कालिदास होते तो यह आपत्ति क्यों भोगनी पड़ती! उनके रहते क्यों यह देश छोड़ना पड़ता! अब आप लोगों को उनके निकलवाने का मज़ा मिला है।

सच तो यह है कि जिनकी संसार में प्रतिष्ठा है, जो विद्वान् हैं, जो आदर-सत्कार के योग्य हैं उनके साथ जो ईर्ष्या-द्वेष करता है उसका कुल ही नष्ट हो जाता है।

इसके बाद सब कवि बड़े दुखी हुए। कालिदास के लिए सब विलाप करने लगे। फिर सब शान्त होकर कहने लगे कि आज आख़िरी दिन है। कालिदास के बिना कोई भी समस्या पूरी नहीं कर सकता। क्योंकि—

योद्धाओं की युद्धभूमि में और कवियों की कविमण्डल में जीत या हार दो ही घड़ी में मालूम हो जाती है।

अब अगर आप लोगों की राय हो तो आज ही आधी रात के समय अपना-अपना असबाब लेकर चुपके से निकल चलो। अब इस देश को छोड़ देना ही अच्छा है और अगर अपने आप न छोड़ोगे तो प्रातःकाल होते ही राजकर्मचारी हमको तथा हमारे बाल-बच्चों को यहाँ से निकाल देंगे।

इस तरह सोच-विचारकर वे सब कवि अपने-अपने घर गये और सब सामान साथ ले गाड़ियों पर लादकर वहाँ से चल दिये।

ये सब कवि उसी रास्ते में जा रहे थे जहाँ धारा से दूर कालिदास रहते थे। उनको इनकी आवाज़ सुनाई दी। वे जान गये कि ये कवि लोग कहीं जा रहे हैं। उन्होंने एक मनुष्य भेजा कि देखो तो ये लोग कौन जा रहे हैं। उसने वापस आकर कहा कि ये राजा भोज के कवि हैं।

सच है, तालाब की जो शोभा एक राजहंस से होती है वह उसके चारों ओर रहनेवाले हज़ार बगलों से नहीं हो सकती।

अब कालिदास ने विचार किया कि इन जाते हुए पण्डितों की रक्षा ज़रूर करनी चाहिए। क्योंकि जो मनुष्य दुखी मनुष्यों की रक्षा नहीं करता उसके बल से कुछ नहीं, जो धन अतिथि को नहीं दिया जाता वह धन धन नहीं, जो अपनी भलाई करनेवाली नहीं वह क्रिया कुछ भी नहीं। जो सज्जन मनुष्यों से द्वेष रक्खे उसका जीवन व्यर्थ ही है।

यह विचारकर कालिदास ने अपना वेष बदल लिया और वे तलवार लेकर वहाँ से चल दिये। आध कोस के फ़ासले पर वे सब जाते हुए मिले। ये उनके सामने जाकर खड़े हुए और उनको आशीर्वाद देकर बोले—

आप विद्या में समुद्ररूप हैं, आप लोग राजा भोज की सभा में बृहस्पति की तरह बड़ा महत्व पानेवाले हैं। आप लोग इकट्ठे होकर कहाँ जाना चाहते हैं? कहिए, आप लोग प्रसन्न तो हैं? राजा भोज तो आनन्दपूर्वक हैं? इसके बाद कालिदास ने कहा कि मैं राजा भोज से धन पाने की

इच्छा से उनके दर्शन करने के लिए काशी से आया हूँ। कालिदास के धन पाने की इच्छा सुनकर सब कवि हँसने लगे और वहाँ से आगे बढ़ने लगे। उन लोगों में एक कवि बड़ा समझदार था। वह खड़ा होकर कहने लगा कि आप हम लोगों की बात पीछे से भी सुनेंगे इसलिए मैं अभी बतला देना उचित समझता हूँ। बात यह है कि राजा भोज ने एक समस्या हम लोगों को पूरी करने के लिए दी थी। वह समस्या हममें से कोई भी पूरी न कर सका, इसलिए राजा भोज नाराज़ हो गये और उन्होंने अपने देश से हमको निकाल दिया। कालिदास तो बड़े चतुर थे। उन्होंने कहा कि वह समस्या क्या थी सो तो सुनाओ। उस पण्डित ने समस्या सुना दी। समस्या सुनते ही कालिदास उसका सारा मतलब समझ गये। उन्होंने कहा कि राजा भोज ने चन्द्रमा का पूर्णमण्डल देखकर यह गूढ़ समस्या कही है। इसके आगे का हिस्सा इस तरह होना चाहिए—

अणु इदि वण्णयदि कहं अणकिदि तस्स प्पडिपदि चंदस्स।

मतलब यह कि उस प्रतिपदा के चन्द्रमा की और उस मुखरूपी चन्द्रमा की बराबरी किस तरह हो सकती है अर्थात् मुँह तो सदा पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य है और चन्द्रमा पड़वा के दिन एक ही कलावाला रह जाता है फिर बराबरी किस तरह हो सकती है?

इस समस्यापूर्ति को सुनते ही सब कवि विस्मित हो गये। इधर कालिदास समस्या कहकर, उन सबको प्रणाम करके,

वहाँ से चल दिये। वे पण्डित आपस में कहने लगे कि यह मनुष्य तो साक्षात् सरस्वतीरूप मालूम होता है। मालूम होता है, यह हमारी रक्षा के लिए ही आया था।

अब वे सब वहाँ से अपने-अपने घर को लौट आये। सबने सलाह की कि सबेरा होते ही राजा भोज की सभा में चलना चाहिए और यह समस्या उनको सुनानी चाहिए। उन्होंने वैसा ही किया। सबेरा होते ही सब इकट्ठे होकर सभा में गये और राजा को आशीर्वाद देकर बैठ गये। फिर बाण कवि ने राजा से कहा कि हे सर्वज्ञ! आपने जो समस्या कही थी उसका पूरा-पूरा मतलब तो ईश्वर जानता होगा; हम ग़रीब क्या जान सकते हैं, फिर भी कुछ कहा जाता है। उसने पूरी की हुई समस्या सुना दी। समस्या को सुनते ही राजा को सन्देह हो गया कि यह समस्या इन लोगों की बनाई हुई नहीं है। मालूम होता है, आसपास कहीं कालिदास रहते हैं। उस वक़्त तो राजा ने बाण पण्डित को पन्द्रह लाख रुपये दे दिये और सब विद्वानों को वहाँ से चले जाने की आज्ञा दी। वे लोग वहाँ से चले गये। फिर अपने द्वारपाल को आज्ञा दी कि जो कोई पण्डित आवे उसे मेरे पास पहुँचाओ। उन कवियों में से एक कवि राजा से मिला और मिलकर कालिदास की समस्यापूर्ति का सारा हाल कह सुनाया। राजा ने विचार किया कि मेरे डर से कालि-दास चारण का भेष बनाकर मेरे ही देश में रहता है। उसने

उसी समय अपने नौकरों को आज्ञा दी कि जिस जगह पण्डितों से कवि कालिदास मिले थे वहीं जाओ और उनको खोजो। राजा भोज और नौकर घोड़ों पर सवार होकर कालिदास को खोजते हुए वहीं पहुँचे जहाँ कालिदास रहते थे। वहाँ कालिदास मिल गये। उनको देखते ही राजा उनके चरणों में गिरकर कहने लगे—

हे कवे! चलते हुए, ठहरते हुए, जागते हुए और सोते हुए मेरा मन कभी तुमसे दूर न हो।

भोज की बातें सुनकर कालिदास को बड़ी लज्जा आई। वे नीचे को मुँह करके खड़े हो गये। राजा ने उनकी ओर देखते हुए कहा—

हे कलाओं के स्थान कालिदास! राजमार्ग में जाते हुए मुझको आपने दास की तरह अपने पास बुला लिया तो इसमें लज्जा की कौन सी बात है। मैं तो आपका दास हूँ।

कालिदास के मिल जाने से राजा को बड़ी ख़ुशी हुई। इस ख़ुशी में उन्होंने एक-एक ब्राह्मण को एक-एक लाख रुपये दिये। फिर कालिदास को अपने घोड़े पर सवार कराकर राजा अपने घर को लौट आये।

विद्वान् हो तो कालिदास के समान हो। देखिए, कालिदास की विद्वत्ता कैसी थी कि अन्त में उनकी वैसी ही फिर प्रतिष्ठा हुई जैसे पहले होती थी।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

विलोचन कवि का कुटुम्ब

एक दिन राजा भोज की सभा में विलोचन नामक कवि अपने कुटुम्ब के साथ आया। वहाँ आकर वह चुपचाप खड़ा हो गया। उसको देखकर राजा भोज ने कहा—

"बड़े आदमियों के कामों की सिद्धि शरीर में ही हुआ करती है; सांसारिक सामान में नहीं।"

वह कवि पूरा कवि तो था ही, पर चतुर भी अव्वल दरजे का था। राजा की बात सुनकर वह श्लोक बनाकर फ़ौरन् पढ़ने लगा—

> घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनो-
>
> वने वासः कन्दादिकमशनमेवंविधगुणः।
>
> अगस्त्यः पाथोधिं यदकृत कराम्भोजकुहरे
>
> क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

जिसका जन्म तो घड़े से हुआ है, और कुटुम्बी हरिण आदि हैं अर्थात् हरिण आदि को ही जो कुटुम्बी मानता है,

जिसके कपड़े भोज-पत्र के हैं, जो सदा वन में रहता है, और कन्दमूल खाकर ही अपना निर्वाह करता है ऐसे गुणोंवाला अगस्त्य मुनि समुद्र को सोख गया। इसलिए सिद्ध है कि महान् पुरुषों के कामों की सिद्धि शरीर में ही होती है, सांसारिक सामान से नहीं।

चतुरता से भरे हुए कवि का श्लोक सुनकर राजा भोज बड़े ख़ुश हुए। उन्होंने ख़ुश होकर कवि का अच्छी तरह आदर-सत्कार किया और उनको मूल्यवान् रत्न आदि देकर सन्तुष्ट किया।

विलोचन कवि के साथ उनकी स्त्री भी थी। वह भी बड़ी विदुषी थी। उसे देखकर राजा ने कहा कि हे मातः, आप भी कुछ कहिए। वह भी तत्काल कहने लगी—

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्त तुरगा—
निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि।
रविर्यात्येवांतं प्रतिदिनमपारस्य नभसः
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

अर्थात् सूर्य के रथ का पहिया एक है, पर उसके घोड़े सात हैं और वे भी साँपों से बँधे हुए! उसका रास्ता आकाश में है परन्तु उसका सारथि पंगुल है। ऐसा होते हुए भी सूर्य रोज़ समस्त आकाश में घूम जाता है। इससे मालूम हुआ कि जो बड़े होते हैं उनके कामों की सिद्धि शरीर में ही होती है, सांसारिक सामानों से नहीं।

स्त्री की कविता सुनकर राजा भोज और भी अधिक .खुश हुए और उन्होंने उसको भी आदरपूर्वक मूल्यवान् रत्न आदि देकर .खुश किया।

कवि के साथ उसका पुत्र भी था। वह भी बड़ा विद्वान् था। राजा भोज ने जब उसे देखा तब उससे भी कहा कि हे बटुक! तुम भी कुछ सुनाओ। उसने तत्काल ही कहा—

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि-
विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
पदातिर्मर्त्योऽसौ सकलमवधीद्राक्षसकुलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

मतलब यह कि लङ्का का विजय करने के लिए मार्ग में समुद्र पड़ता है वह अपने पैरों से तैरकर पार किया। वहाँ लङ्का में पुलस्त्य ऋषि का वंशज रावण प्रबल शत्रु था, संग्रामभूमि में सहायता करनेवाले केवल बन्दर ही थे और रामचन्द्रजी पैदल चलनेवाले मनुष्य ही थे; इस प्रकार युद्ध का सामान अच्छी तरह न होते हुए भी बल्कि बहुत ही कम होने पर भी रामचन्द्रजी ने वहाँ के समस्त राक्षस-कुल को मार गिराया और नष्ट कर दिया। इससे सिद्ध हुआ कि बड़े मनुष्यों की सिद्धियाँ शरीर से ही होती हैं; सामान से नहीं।

कवि के पुत्र का भी श्लोक सुनकर राजा भोज बड़ा .खुश हुआ और उसे भी बहुमूल्य रत्न आदि देकर सन्तुष्ट किया।

कवि के कुटुम्ब के साथ उसके पुत्र की स्त्री भी थी। उसकी उम्र कम थी और वह लज्जावती भी अधिक थी। उसे देखकर राजा भोज ने उससे भी कहा कि हे मातः, आप भी कुछ सुनाइए। वह भी ख़ूब पढ़ी-लिखी थी, उसने तत्काल कहा—

> धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशां
> दृशां कोणो बाणः सुहृदपि जडात्मा हिमकरः।
> स्वयं चैकोनङ्गः सकलभुवनं व्याकुलयति
> क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे॥

अर्थात् जिसका फूल-रूप धनुष है, भौंरा-रूप जिसकी प्रत्यञ्चा है, चञ्चल नेत्रोंवाली स्त्रियों के नेत्र-कोण ही जिसके बाण हैं, जिसका मित्र जड़ चन्द्रमा है और वह ख़ुद अंगरहित है अर्थात् उसके अंग कोई भी नहीं है, ऐसा केवल कामदेव ही समस्त संसार को व्याकुल कर देता है अर्थात् अपने वश में किये हुए है। इससे मालूम हुआ कि बड़ों के कामों की सिद्धियाँ उनके प्रताप से ही हो जाती हैं। उनकी सिद्धियों के लिए सांसारिक सामान की ज़रूरत नहीं।

कवि की पुत्रवधू की कविता सुनकर उस समय सभा में जितने मनुष्य बैठे हुए थे वे तथा राजा सभी बड़े चकित हो गये। राजा भोज ने प्रसन्न होकर उसको अपनी रानी लीलावती के रत्नजटित बहुत आभूषण दिये और उसकी बड़ी प्रशंसा की।

विलोचन कवि तथा उसके कुटुम्ब को अत्यन्त विद्वान् समझकर राजा भोज ने उन सबको अपने राज्य में रहने के लिए जगह दिला दी। वे सब वहीं रहने लगे।

वह समय धन्य था जब कि इस देश में विद्या का इतना अधिक प्रचार था। सब लोग ऐसे विद्वान् हुआ करते थे। एक घर में यदि सभी विद्वान् हों तभी आनन्द होता है। यदि कुछ विद्वान् हुए और कुछ मूर्ख, तो पूरा सुख नहीं मिलता।

———

बीसवाँ परिच्छेद

कुम्हार की उदारता

एक दिन राजा भोज के यहाँ एक कुम्हारी आई और द्वारपाल से कहने लगी कि मैं राजा के दर्शन करना चाहती हूँ। द्वारपाल ने कहा—तेरा क्या काम है, राजा से क्यों मिलना चाहती है? उसने उत्तर दिया कि मैं तुमको कदापि न बतलाऊँगी; वह काम राजा से ही कहने का है। द्वारपाल सभा में गया और राजा भोज से कहने लगा कि राजन्! एक कुम्हारी आपके दर्शन करना चाहती है। मैंने उससे पूछा कि तेरा क्या काम है किन्तु उसने काम मुझे नहीं बतलाया, आपसे ही निवेदन करना चाहती है। राजा ने कहा, अच्छा उसे भेजो। कुम्हारी आई और नमस्कार करके कहने लगी—

हे राजन्! मिट्टी खोदते हुए मेरे स्वामी को एक ख़ज़ाना मिला है। वह इस वक़्त वहीं बैठा हुआ उसकी रक्षा कर रहा है, और मैं आपसे निवेदन करने के लिए आई हूँ।

ख़ज़ाने का हाल सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। उसने अपने नौकरों को भेजा कि वहाँ जाकर कलश ले आओ। नौकर ले आये। राजा ने कलश को देखा तो उसके भीतर मणि-मोतियों से युक्त द्रव्य पाया। राजा ने कुम्हार से पूछा कि यह क्या है? कुम्हार ने कहा—

राजचन्द्रं समालोक्य त्वां तु भूतलमागतम्।
रत्नश्रेणिमिषान्मन्ये नक्षत्राण्यभ्युपागमन्॥

अर्थात् हे राजन्! मेरी समझ में तो यह आता है कि आप राजारूप चन्द्रमा को पृथिवी पर आया हुआ देखकर रत्नों के बहाने नक्षत्रों की यह पंक्ति आपको प्राप्त हुई है।

कुम्हार के मुँह से यह उत्तम श्लोक सुनकर राजा बड़ा चकित हुआ। उसने ख़ुश होकर वह सारा ख़ज़ाना उसी कुम्हार को दे दिया।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

राज्य का दान

एक दिन द्वारपाल आकर राजा से कहने लगा कि कवि शेखर नामक महाकवि द्वार पर खड़ा है और आपसे मिलना चाहता है। राजा ने कहा कि अच्छा, भेजो। कवि ने आकर आशीर्वाद दिया। फिर कहने लगा—

> राजन्दौवारिकादेव प्राप्तवानस्मि वारणम्।
> मदवारणमिच्छामि त्वत्तोऽहं जगतीपते!

हे राजन्! 'वारण' (रुकावट) तो मुझे द्वारपाल से ही मिल चुका है अर्थात् द्वारपाल ने आगे बढ़ने से मुझे रोका था। हे जगतीपते! अब 'मदवारण' (मस्त हाथी) की तुमसे इच्छा करता हूँ।

उस वक़्त राजा भोज पूर्व को मुँह किये हुए बैठे थे। वे कवि से ख़ुश हो गये और पूर्व देश का सम्पूर्ण राज्य कवि को देने का संकल्प कर लिया इसलिए वे दक्षिण की ओर मुँह करके बैठ गये। कवि विचारने लगा कि यह क्या बात है। राजा ने तो मुँह फेर लिया। क्या मुझसे नाराज़ हो

गये। वह दक्षिण की ओर, अर्थात् राजा जिस ओर मुँह किये हुए बैठे थे, जाकर पढ़ने लगा—

अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कथम्।
मार्गणौघः समायाति गुणो याति दिगन्तरम्॥

हे राजन्! यह अपूर्व धनुर्विद्या तुमने कहाँ से सीखी जो बाणों का समूह तो पास आता है और गुण अर्थात् डोरी आकाश को जाती है।

कवि की इस बात से भी राजा बड़े ख़ुश हुए। उन्होंने उस कवि को दक्षिण देश का भी राज्य दे देने का विचार कर लिया और ख़ुद पश्चिम की ओर मुँह करके बैठ गये। कवि उनका मतलब फिर भी न समझा इसलिए पश्चिम दिशा में उनके सामने जाकर कहने लगा—

सर्वज्ञ इति लोकोऽयं भवन्तं भाषते मृषा।
पदमेकं न जानीषे वक्तुं नास्तीति याचके॥

हे राजन्! लोग आपको सर्वज्ञ कहते हैं यह बिलकुल झूठ है क्योंकि आप तो माँगनेवालों के सामने 'नहीं' यह एक शब्द भी नहीं कह सकते।

इसके बाद ख़ुश होकर राजा भोज ने पश्चिम देश का राज्य भी कवि को देने का विचार कर लिया। इसलिए वे उत्तर की ओर मुँह फेरकर बैठ गये। कवि बेचारा अब तक निराश ही रहा। उसने राजा का मतलब अब तक न समझ पाया। वह उत्तर की ओर भी जाकर उनके सामने कहने लगा—

सर्वदा सर्वदोऽस्तीति मिथ्या त्वं कथ्यसे बुधैः ।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥

हे राजन्! मैंने सुना था कि आप सदा सबको सब कुछ देते हैं लेकिन यह बिलकुल झूठ है क्योंकि शत्रु आपकी पीठ को नहीं पाता और पर-स्त्री आपके वक्षःस्थल को प्राप्त नहीं कर सकती। अर्थात् आपने शत्रुओं को कभी पीठ पीछे नहीं किया और आप पर-स्त्री से प्रेम नहीं करते।

कवि की ये बातें सुनकर राजा भोज और भी अधिक ख़ुश हुए और उत्तर देश का राज्य भी कवि को दिया हुआ मान उठकर खड़े हो गये।

कवि अब तक उनका मतलब न समझा इससे वह फिर कहने लगा—

राजन्कनकधाराभिस्त्वयि सर्वत्र वर्षति ।
अभाग्यच्छत्रसंच्छन्ने मयि नायान्ति बिन्दवः ॥

हे राजन्! आप सब जगह सोने की वर्षा करते हैं पर मेरे ऊपर अभाग्य-रूपी छत्र तना हुआ है, वहाँ तक एक बूँद भी नहीं पहुँचती।

इसके बाद राजा रनिवास को चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी रानी लीलावती से कहा कि हे देवि! आज मैंने अपना सारा राज्य एक कवि को दे डाला। अब तू मेरे साथ तपोवन को चल। इसी मौक़े पर वह कवि निराश हुआ दर्वाजे पर आ गया। वहाँ राजा का मन्त्री बुद्धिसागर

बैठा हुआ था। उसने उससे पूछा, हे कवि! राजा ने तुमको क्या दिया। कवि ने निराश होकर कहा—कुछ भी नहीं। मन्त्री ने कहा—अच्छा, वे श्लोक तो पढ़ो जो तुमने राजा को सुनाये थे। कवि ने अपने सुनाये हुए श्लोक फिर सुना दिये। मन्त्री ने कहा—तुमको राजा ने बहुत धन दिया है। अगर तुम उसे बेचना चाहो तो एक करोड़ में बेच दो। कवि ने कहा—बहुत अच्छा। कवि को एक करोड़ रुपया देकर मन्त्री ने चलता कर दिया। फिर वह मन्त्री राजा भोज के पास गया। वहाँ राजा ने बुद्धिसागर को देखते ही कहा—हे मन्त्री! आज मैंने अपना सारा राज्य एक कवि को दे दिया है। अब मैं रानियों-सहित तपोवन को जाता हूँ। यदि तुम लोगों में से कोई साथ चलना चाहे तो चल सकता है। बुद्धिसागर ने कहा—राजन्! उस कवि ने सारा राज्य मेरे हाथ एक करोड़ रुपये में बेच दिया है। रुपया मैंने आपके ख़ज़ाने में से दिया है। कवि रुपये लेकर चला गया। अब सारा राज्य आपका ही है। आप उसका आनन्द-पूर्वक भोग कीजिए।

प्रधान मन्त्री बुद्धिसागर की चतुरता पर राजा बड़ा ख़ुश हुआ। फिर वे दोनों और भी अधिक मेल-मिलाप से रहने लगे।

बाईसवाँ परिच्छेद

कवि मल्लिनाथ

एक दिन जब राजा भोज की सभा भरी हुई थी तब द्वारपाल आकर कहने लगा कि राजन्! दक्षिण देश से आये हुए एक मल्लिनाथ कवि द्वार पर खड़े हैं। वे सिर्फ़ एक लँगोट पहने हुए हैं, उनके पास और कोई कपड़ा नहीं है। राजा ने कहा कि यहाँ भेजो। कवि आये और राजा को कल्याणरूप आशीर्वाद देकर बैठ गये। बैठते ही कवि कहने लगे—

> नागो भाति मदेन खं जलधरैः पूर्णेन्दुना शर्वरी
> शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम्।
> वाणी व्याकरणेन हंसमिथुनैर्नद्यः सभा पण्डितैः
> सत्पुत्रेण कुलं त्वया वसुमती लोकत्रयं भानुना॥

अर्थात् हाथी की शोभा मद से, आकाश की शोभा मेघों से, रात की शोभा चाँदनी से, स्त्री की शोभा शील से, घोड़े की शोभा जल्दी चलने से, मन्दिर की शोभा नित्य उत्सव होने से, वाणी की शोभा व्याकरण से, नदी की शोभा हंसों के

जोड़े से, सभा की शोभा पण्डितों से, कुल की शोभा लड़के के अच्छे होने से, पृथ्वी की शोभा आपसे और तीनों लोकों की शोभा सूर्य से होती है।

इसके बाद राजा ने कहा—हे विद्वन्! आपका मतलब क्या है सो बतलाइए? कवि ने कहा—

> अम्बा कुप्यति न मया न स्नुपया सापि नाम्बया न मया।
> अहमपि न तया न तया वद राजन् कस्य दोषोऽयम्?

मेरी माता ग़ुस्सा करती है पर मुझसे नहीं और न पुत्रवधू से ही। पुत्रवधू भी क्रोध करती है पर मुझसे या मेरी माता से नहीं। मैं भी जब कभी क्रोध करता हूँ तब न माता से न पुत्रवधू से ही। हे राजन्! अब आप ही बतलाइए कि ग़ुस्सा करने में किसका दोष है?

कवि का मतलब राजा समझ गया। उसने जान लिया कि यह सब दोष ग़रीबी का है; फिर उसे ख़ूब धन देकर पूर्ण-मनोरथ किया।

तेईसवाँ परिच्छेद

माघ कवि

विद्वत्ता में, दान करने में और गुणग्राही होने में जिस तरह राजा भोज संसार में प्रतिष्ठित हुए उसी तरह माघ पण्डित भी विद्वत्ता तथा असाधारण दान करने में संसार में विख्यात थे। यही नहीं बल्कि किसी-किसी बात में माघ पण्डित भोज से भी बढ़े-चढ़े थे। माघ का यह नियम था कि कोई भी माँगनेवाला द्वार से ख़ाली हाथ न लौटे। वे दान करने में अभूतपूर्व हुए। इसी दान के कारण वे संसार भर में प्रतिष्ठित हो गये।

एक दिन राजा भोज ने भी माघ पण्डित की बड़ी प्रशंसा सुनी। इसने भी विचार किया कि माघ का अवश्य दर्शन करना चाहिए। इसने अपने अच्छे समझदार नौकरों को माघ कवि के घर भेजा और उनको आदरपूर्वक अपने नगर में बुलवाया। उनके आने पर राजा भोज ने उनका अच्छी तरह आदर-सत्कार किया और उनके रहने के लिए एक उत्तम मकान बतलाया। यही नहीं किन्तु उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के

लिए चतुर नौकर नियत कर दिये जिससे उनको किसी तरह का कष्ट न हो।

माघ कवि बहुत दिन तक धारा नगरी में रहे और उन्होंने आनन्दपूर्वक समय बिताया। रहते-रहते जब बहुत दिन हो गये तब वहाँ से उनका मन उचट गया। उनका विचार हुआ कि अपने देश में चलना चाहिए। यह बात राजा भोज को भी मालूम हुई। उन्होंने बहुत मना किया कि आप यहीं रहें; यहाँ आपको किसी तरह का कष्ट न होगा, अब वहाँ न जाइए किन्तु माघ ने तो वहाँ जाना निश्चय कर लिया था अतः उन्होंने जाना ही उचित समझा। चलते समय राजा भोज ने उनको अच्छी तरह दान-दक्षिणा देकर बिदा किया।

माघ कवि दान-शूर तो थे ही। वहाँ जाने पर थोड़े ही दिन बाद उनके पास कुछ भी न रह गया। जो कुछ पास था सब दान कर दिया। अब माँगनेवालों को क्या दिया जावे? पास कुछ भी नहीं। उन्होंने विचार किया कि राजा भोज ही अद्वितीय दानी है, उसी के पास जाना चाहिए। वे अपनी स्त्री को साथ लेकर धारा नगरी को चल दिये। वहाँ पहुँचकर नगरी से बाहर एक स्थान पर ठहर गये और एक पत्र लिखकर अपनी स्त्री को दे दिया। स्त्री पत्र लेकर राज-दरबार में पहुँची।

राजा भोज दरबार में बैठे हुए थे। द्वारपाल ने कहा—राजन्! गुर्जर देश से पण्डित-प्रवर माघ आये हैं और नगर

के बाहर ठहरे हैं। उन्होंने अपनी स्त्री को भेजा है। वह आपके दर्शन करना चाहती है। राजा ने कहा—अच्छा आने दो। उसने आकर राजा को माघ का लिखा हुआ पत्र दे दिया। राजा उसे पढ़ने लगे। उसमें लिखा था—

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिनिहतानां हा विचित्रो विपाकः॥

अर्थात् सूर्य के उदय होने से और चन्द्रमा के अस्त होने से कुमुदवन की शोभा जाती रही; और कमलों में शोभा बढ़ गई। उल्लुओं (पक्षियों) का आनन्द जाता रहा और चकवा प्रसन्न हो गये। इस तरह भाग्यहीनों का कर्मफल विचित्र है।

इस तरह उस पत्र में प्रातःकाल का वर्णन देखकर राजा भोज ने माघ पण्डित की स्त्री को तीन लाख रुपये ख़ज़ाने से दिला दिये और कहा कि हे मातः! ये रुपये मैंने तुम्हारे भोजन के वास्ते दिये हैं। मैं प्रातःकाल माघ पण्डित के दर्शन करने को आऊँगा। मैं उन्हें नमस्कार करके पूर्णमनोरथ करूँगा।

तीन लाख रुपये लेकर माघ पण्डित की स्त्री अपने पति के पास जा रही थी। रास्ते में बहुत से माँगनेवाले मिल गये। उन्होंने शरद ऋतु के चन्द्रमा की उपमा देते हुए माघ की बड़ी प्रशंसा की। उनका मतलब माँगने से था। उस स्त्री

ने अपने पति की प्रशंसा सुनकर वह सब रुपये माँगनेवालों को मार्ग में ही दे डाले। जब वह माघ पण्डित के पास पहुँची तब उसने कहा कि हे नाथ! राजा भोज ने मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया और उन्होंने भोजन के लिए तीन लाख रुपये दिये। उन रुपयों को लेकर मैं आ रही थी कि रास्ते में मुझे बहुत से माँगनेवाले मिल गये और वे सब रुपये मैंने उनको दे दिये। माघ ने कहा—हे देवि! तुमने बहुत अच्छा किया। पर, अब यह तो बतलाओ कि ये जो सामने माँगने-वाले आ रहे हैं इनको क्या देना चाहिए? इतने में ही एक मँगता माघ के पास आ गया और उनके पास एक वस्त्र मात्र बचा हुआ देखकर पढ़ने लगा—

> आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्त-
> मुद्दामदावविधुराणि च काननानि।
> नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा
> रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमश्रीः॥

अर्थात् हे मेघ! सूर्य की गरमी से तपे हुए पर्वत-कुल को धीरज देकर और वनों को तेज़ दावाग्नि से शान्त करके तथा सैकड़ों नदी और नालों को पूर्ण करके (भरकर) जो तू ख़ाली हुआ है सो तेरी यही उत्तम शोभा है।

यह सुनकर माघ अपनी स्त्री से कहने लगा कि हे देवि,—

> अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा
> त्यागे रतिं वहति दुर्ललितं मनो मे।

याञ्चा च लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं परिवेदनेन ॥

मेरे पास धन नहीं है और मुझको दुष्टा तृष्णा नहीं त्यागती। मेरा दुर्ललित मन त्याग करने में प्रसन्न होता है और दूसरे से माँगना मानों प्रतिष्ठा में बट्टा लगाना है। अब मैं क्या करूँ? ख़ुद मरने में आत्महत्यारूपी पाप लगता है और विलाप करने से होता ही क्या है। अच्छा हो कि मेरे प्राण स्वयं छूट जावें। दूसरी बात यह कि—

दारिद्र्यानलसंतापः शान्तः संतोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यति ॥

दरिद्रतारूपी अग्नि से उत्पन्न हुआ ताप सन्तोषरूपी जल से शान्त हो सकता है परन्तु माँगनेवालों की आशा भङ्ग करके जो अन्तर्दाह हो रहा है वह किससे शान्त हो सकता है? मुझे संसार में ऐसी कोई चीज़ दिखलाई नहीं देती जो मेरे अन्तर्दाह को शान्त करे।

उस वक़्त माघ पण्डित की उस दुरवस्था को देखकर जितने मँगते आये थे वे सब अपने-अपने घर चले गये। मँगतों के चले जाने पर माघ पण्डित कहने लगे—

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिभिर्व्यर्थतां गतैः।
पश्चादपि च गन्तव्यं क्व सोऽर्थः पुनरीदृशः ॥

अगर प्राण जाते हैं तो भले ही चले जावें। अब प्राणों से क्या जब कि मँगते हताश होकर लौट गये। एक न एक दिन

इन प्राणों को जाना तो है ही। अब इनका काम ही क्या है? फिर ऐसा मौक़ा न मिलेगा।

इस तरह विलाप करते हुए माघ पण्डित के प्राण निकल गये। अपने पति को मरा हुआ देखकर उसकी स्त्री विलाप करने लगी कि हा! जिनके घर पर राजा लोग जाकर दास की तरह सेवा करते थे वे अब स्वर्ग को पधार गये। हा! इस समय मेरे सिवा इनके पास एक भी मनुष्य नहीं है।

जब राजा भोज को ख़बर हुई कि माघ पण्डित मर गये हैं तब वे कई विद्वानों को साथ लेकर वहाँ गये और उन्होंने उनकी अच्छी तरह अन्त्येष्टि-क्रिया आदि कराई। इसके बाद उनकी स्त्री भी सती-धर्म ग्रहण करके परलोक को प्राप्त हुई।

माघ पण्डित के मरने से राजा भोज को बड़ा दुख हुआ। वह उनके शोक में अत्यन्त दुर्बल हो गया। बात यह कि भोज विद्वानों का बड़ा आदर करता था; सदा उन्हीं से बात-चीत करके समय बिताता था।

माघ पण्डित के मरने के समय अच्छे कवि तथा कवि-शिरोमणि कालिदास भी वहाँ न थे। वे कुछ नाराज़ होकर बाहर चले गये थे। जब मन्त्रियों ने देखा कि राजा भोज माघ पण्डित के शोक में दुर्बल हुए जाते हैं तब उन्होंने सोचा कि यदि इस वक़्त कवि कालिदास यहाँ होते तो राजा को इतना दुख न होता। उन्होंने आपस में सलाह की कि वल्लभ देश से कालिदास को बुलाना चाहिए। उन्होंने कालि-

दास के लिए एक पत्र लिखकर एक मन्त्री को दिया और उसे कालिदास के पास भेज दिया। वह कालिदास के पास पहुँचकर कहने लगा कि मुझको मन्त्रियों ने आपके पास भेजा है और यह पत्र दिया है। पत्र खोलकर कालिदास पढ़ने लगे। उसमें लिखा था—

न भवति स भवति न चिरं भवति चिरं चेत्फले विसंवादी।
कोपः सत्पुरुषाणां तुल्यः स्नेहेन नीचानाम्॥

सज्जन मनुष्यों को पहले तो गुस्सा आता ही नहीं और यदि आता है तो बहुत देर तक नहीं रहता। यदि कभी बहुत देर तक भी बना रहा तो वह अच्छा फल देनेवाला होता है। बात यह कि अच्छे मनुष्यों का क्रोध भी नीच मनुष्यों के स्नेह के बराबर होता है।

सहकारे चिरं स्थित्वा सलीलं बालकोकिल।
तं हि त्वाद्यान्यवृक्षेषु विचरन्न विलज्जसे॥

हे बालकोकिल! क्रीड़ा करता हुआ बहुत दिन तक आम के वृक्ष पर रहा, अब उसे त्यागकर दूसरे वृक्षों पर विचरता हुआ क्या तू लज्जित नहीं होता! अभिप्राय यह कि राजा भोज जैसे सज्जन राजा के पास रहकर अब इधर-उधर क्यों घूमते फिरते हो? वहाँ क्या लाभ है?

कलकण्ठ यथा शोभा सहकारे भवद्गिरः।
खदिरे वा पलाशे वा किं तथा स्याद्विचारय॥

अर्थात् हे कलकण्ठ कोकिल ! तेरी वाणी की शोभा जैसी आम के वृक्ष पर थी क्या वैसी शोभा खैर और ढाक के वृक्ष पर हो सकती है ? ज़रा विचार तो कर।

उस पत्र में ये वचन पढ़कर कालिदास के मन ने पलटा खाया। वे जिस राजा के पास रहते थे उससे पूछकर तत्काल धारा नगरी को चल दिये। वहाँ पहुँचकर राजा भोज से मिले। भोज ने उनकी बड़ी प्रतिष्ठा की। उनके आने से भोज का शोक जाता रहा। इसके बाद और भी बाहर गये हुए कवि वहाँ आ गये। राजा भोज की फिर पहले के समान सभा होने लगी और आनन्दपूर्वक समय बीतने लगा।

चौबीसवाँ परिच्छेद

एक ब्रह्मचारी

एक दिन राजा भोज अपने महल में बैठे हुए थे। उनके पास द्वारपाल आया और कहने लगा कि हे देव! पर्वत देश से आया हुआ एक ब्रह्मचारी विद्वान् द्वार पर खड़ा है। वह आपसे मिलना चाहता है। राजा ने कहा, अच्छा भेजो। ब्रह्मचारी ने आकर 'चिरञ्जीव' कहकर राजा को आशीर्वाद दिया। कुशलप्रश्न पूछने के बाद राजा ने कहा कि हे ब्रह्मचारिन्! आपकी उम्र बहुत कम है और आजकल कलियुग है। इस युग में यह आपका वेश अच्छा नहीं मालूम होता। बतलाइए तो कि आपने कौन सा व्रत धारण किया है? मालूम होता है, आप व्रत अधिक रखते हैं और निराहार रहते हैं। इसी से आप अत्यन्त दुर्बल हो रहे हैं। यदि आप गृहस्थ धर्म में रहना पसन्द करें तो मैं आपके विवाह का प्रबन्ध कर दूँ जिससे आपको कष्ट भोगना न पड़े। कहिए, आपको स्वीकृत है?

ब्रह्मचारी ने कहा—हे देव! आप राजा हैं। आप जो कुछ कहें कह सकते हैं; आप जो कुछ करना चाहें कर सकते

हैं; आपको कोई बात मुश्किल नहीं। पर, हे राजन्! मेरा जो सिद्धान्त या मन्तव्य है उसे कृपा करके सुन लीजिए—

सारङ्गाः सुहृदो गृहं गिरिगुहा शान्तिः प्रिया गेहिनी
वृत्तिर्वन्यलताफलैर्निवसनं श्रेष्ठं तरूणां त्वचः।
तद्ध्यानामृतपूरमग्नमनसां येषामियं निर्वृति-
स्तेषामिन्दुकलावतंसयमिनां मोक्षेऽपि नो नः स्पृहा॥

अर्थात् पशु-पक्षी मेरे मित्र हैं; पर्वत की गुफा ही मेरा घर है; अपने मन की प्यारी शान्ति ही मेरी स्त्री है; अग्नि, फल और लता आदि से मेरी जीविका है; और वृक्षों की छाल ही मेरे लिए उत्तम कपड़े हैं। प्रभु के ध्यान-रूप अमृतपूर से जिनका मन भरा हुआ है अर्थात् प्रसन्न है, उनके लिए यही गृहस्थ आनन्ददायक है। हम जैसे महादेव के उपासकों को तो मोक्ष में भी इच्छा नहीं है।

ब्रह्मचारी की बातें सुनकर राजा भोज बड़े ख़ुश हुए और उसके चरण छूने के बाद कहने लगे कि हे ब्रह्मचारिन्! अब कृपा करके यह बतलाइए कि मेरा कर्तव्य क्या है अर्थात् मुझे क्या करना चाहिए। उसने कहा कि हे राजन्! मैं काशी जाना चाहता हूँ इसलिए आप मेरे साथ अपने अच्छे-अच्छे पण्डितों को भेज दीजिए। मैं उनके साथ बातचीत करता हुआ वहाँ जाऊँगा। अगर आप मेरे इस काम को कर देंगे तो मुझे बड़ी ख़ुशी होगी। राजा ने स्वीकार कर लिया और ब्रह्मचारी के साथ कई अच्छे-अच्छे विद्वानों को

जाने की आज्ञा दे दी। कई अच्छे विद्वान् ब्रह्मचारी के साथ जाने के लिए तैयार हो गये पर कालिदास ने जाना स्वीकार न किया। तब कालिदास से राजा ने पूछा कि सुकवे! तुम काशी क्यों नहीं जाते ? कालिदास ने कहा—हे राजन्! आप तो सब कुछ जानते-बूझते हैं। आपसे विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। उन्होंने कहा—

हे राजन्! जो मनुष्य देवताओं के देवता महादेव से दूर रहते हैं—जो कभी ईश्वर का भजन नहीं करते किन्तु उससे दूर रहते हैं—वे ही मनुष्य तीर्थों में जाते हैं। जो सदा उसका ध्यान रखता है, जो सदा उसका नाम लेता है वह तो ख़ुद ही तीर्थरूप है। मतलब यह कि ईश्वर का भजन करने-वालों को नामधारी तीर्थों से क्या मतलब ?

कालिदास की बात राजा समझ गये। वे उनसे ख़ुश हो गये। फिर उन्होंने उनका और भी अधिक आदर किया।

पचीसवाँ परिच्छेद

मृत्यु की कविता

एक दिन राजा भोज और कवि कालिदास आपस में बातचीत कर रहे थे। राजा ने बातचीत करते-करते कालिदास से कहा—हे कविराज! आप एक ऐसी कविता बनाइए जो मेरी मृत्यु की हो। मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँगा।

कालिदास ने उत्तर दिया—महाराज! आप मृत्यु की कविता क्यों बनवाते हैं? ऐसी कविता मुझसे अच्छी न बन सकेगी, क्षमा कीजिए। भोज ने बार-बार हठ करके कहा कि नहीं महाराज! आज बिना कविता बनवाये मैं तुमको न छोड़ूँगा।

जब राजा ने बहुत हठ किया तब कालिदास वहाँ से उठे और नाराज़ होकर अपने घर को चले गये। कुछ देर बाद वे वहाँ से भी नगर के बाहर चले गये। जब राजा ने यह सुना कि कवि कालिदास नाराज़ होकर शहर से बाहर चला गया है तब उसको बड़ा दुख हुआ। राजा भोज ने कुछ दिन तो यों ही बिताये पर जब बहुत दिन हो गये और कवि कालि-दास उनके पास न आये तब अधिक वियोग राजा से न सहा

गया। अन्त में राजा अपने राज्य का कारोबार अपने राज्य के प्रधान मनुष्यों को सौंपकर, आप योगी का वेश बनाकर, वहीं चले गये जहाँ कवि कालिदास गये थे।

इधर-उधर ढूँढ़ने पर कुछ दिन में कालिदास मिल गये। उन्होंने राजा को पहचाना नहीं। आपस में बातचीत करने लगे। बातचीत करते-करते कालिदास ने पूछा—हे योगिराज, आप कहाँ रहते हैं?

योगी ने उत्तर दिया—हे कविराज! यह संसार ही मेरा देश है। जहाँ रह गया, वहीं मेरा घर हो गया।

कालिदास ने फिर पूछा—आप इस समय कहाँ से आते हैं? योगी ने कहा—मैं इस वक़्त धारा नगरी से आ रहा हूँ। वहाँ एक झगड़ा हो गया है। कालिदास ने घबराकर पूछा—क्या हुआ? योगी ने कहा कि राजा भोज परलोकवासी हो गये। भोज की मृत्यु की बात सुनते ही कालिदास मूर्च्छित हो गये और पृथिवी पर गिर पड़े। जब होश आया तब विलाप करने लगे कि हा! अब राजा भोज के बिना पण्डितों का आदर-सत्कार—मान-प्रतिष्ठा—कौन करेगा! मैं राजा भोज के बिना अब जीकर क्या करूँगा। हा! धारा नगरी बिना मालिक के हो गई। कुछ देर चुप रहकर एक श्लोक बनाकर कालिदास बोले—

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते॥

राजा भोज के परलोकवासी होने से धारा नगरी निराधार—बेसहारे—हो गई। अब सरस्वती का कोई सहारा नहीं रहा। अब सब पण्डित—विद्वान्—निराश्रय हो गये।

जब कालिदास ने अपना बनाया श्लोक पढ़कर सुनाया तब अपने ऊपर कालिदास की अत्यन्त प्रीति जानकर राजा मूर्च्छित हो गये।

राजा की मूर्च्छित अवस्था को देखकर कालिदास ने सोचा कि यह कौन है जो मेरे श्लोक को सुनते ही मूर्च्छित हो गया। जब ख़ूब ध्यान से देखा तब कालिदास ने पहचाना कि यह तो राजा भोज ही है। फिर राजा को सावधान करके कालिदास ने कहा, महाराज! आपने मुझे पहचान लिया है। मैंने जो श्लोक बनाकर कहा था वह अशुद्ध हो गया था। अब सही बनाकर कहता हूँ, सुनिए। शब्द बदलकर सुनाया—

> अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती।
> पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते॥

राजा भोज के होने से धारा नगरी उत्तम आधारवाली हुई है। सरस्वती आश्रयवाली हुई है और सब विद्वान् उनसे शोभा पा रहे हैं।

अपने ऊपर कालिदास की अत्यन्त प्रीति जानकर भोज अत्यन्त ख़ुश हुआ और उसको साथ लेकर धारा नगरी में पहुँचा।

राजा भोज बड़ा विद्वान् था। वह अपनी विद्या, बुद्धि और गुणग्राहकता के लिए सारे देश में विख्यात हो गया। उसने अगणित विद्वानों की मनोहारिणी कविता पर मोहित होकर असंख्य धन पारितोषिक में दे डाला। उसके समय में संस्कृत विद्या की जैसी उन्नति हुई, विद्वानों को जैसा आश्रय मिला, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। राजा भोज लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का ही प्रीतिभाजन था। ये दोनों ही देवियाँ सदा उसकी सहचारिणी बनी रहती थीं। राजा भोज ने बड़ी उत्तमता से राज-काज किया और विद्वानों को ख़ूब धन-दान किया। इस समय राजा भोज संसार में नहीं है, पर उसकी कीर्ति-कौमुदी अभी तक सर्वत्र छा रही है। जब तक इस देश में संस्कृत-विद्या का कुछ भी प्रचार रहेगा तब तक राजा भोज की कीर्ति भी बराबर इसी तरह देदीप्यमान रहेगी।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

कालिदास का संक्षिप्त चरित

इस किताब में कालिदास की बुद्धिमत्ता का वर्णन अधिकता से है। इसलिए हम इनका संक्षिप्त चरित लिख देना उचित समझते हैं जिससे पाठकों को मालूम हो जावे कि कालिदास किस तरह पढ़े-लिखे थे। उनकी पूर्व की दशा कैसी थी? और कालिदास कौन थे? इत्यादि बातों को जानने के लिए उनका कुछ हाल हम यहाँ लिखते हैं। उनका हाल इस तरह सुना जाता है—

बंगाल में एक राजा राज्य किया करता था। उसका नाम था सत्यवान्। उस राजा के चम्पककलिका नाम की एक लड़की थी। राजा का जो प्रधान मन्त्री था उसके भी एक पुत्र था। उसका नाम चूड़ामणि था। राजकन्या तथा चूड़ामणि में एक साथ रहते-रहते मित्रता हो गई। इन दोनों की उम्र बहुत कम थी, इसलिए छोटे लड़कों की तरह ये दोनों एक ही

साथ खेलकूद किया करते थे। इन दोनों में अभी तक इतनी विचारशक्ति पैदा न हुई थी कि कौन सी बात कहनी योग्य है, कौन सी नहीं। एक दिन रोज़मर्रा की तरह दोनों खेल रहे थे। खेलते-खेलते राजकन्या से चूड़ामणि कहने लगा कि अरी चम्पककलिका! तू मेरी स्त्री बनेगी। मैं तेरे साथ विवाह करूँगा। अगर तू मेरी स्त्री बनना अच्छा समझे तो जब तेरे पिता तेरा विवाह करने का विचार करें तब उनसे कह देना कि मैं अपना विवाह चूड़ामणि से करना चाहती हूँ।

मन्त्री के लड़के की बातें सुनकर राजकन्या को कुछ क्रोध हुआ। वह कहने लगी कि अरे चूड़ामणि! तू हमारे पिता के मन्त्री का लड़का है। तू तो हमारा सेवक है। तेरा विवाह मेरे साथ कैसे हो सकता है? क्या मेरे साथ विवाह करने को कोई अच्छे घराने का राजकुमार न मिलेगा! अगर अच्छे घर का कोई राजकुमार मुझको विवाह के लिए न मिला तो मैं दूसरे किसी सामान्य मनुष्य के साथ विवाह न करूँगी, यह निश्चय समझना।

राजकन्या की ये बातें सुनकर चूड़ामणि को क्रोध हो आया। वह कहने लगा कि हे राजपुत्री! सुनो। जब तुम्हारे पिता तुम्हारा विवाह करने का विचार करेंगे तब मेरे पिता से अवश्य कहेंगे। उस समय इस काम को मैं अपने हाथ में ले लूँगा और तेरे लिए ऐसा वर ढूँढ़कर लाऊँगा जो निपट मूर्ख हो। उस समय तू क्या करेगी? राजकन्या

ने कहा कि अरे चूड़ामणि ! मुझे पति मूर्ख मिलेगा या बुद्धिमान्, यह बात तुम्हारे पिता या तुम्हारे भरोसे पर नहीं है। यह बात तो केवल भाग्य के भरोसे पर है। मेरे भाग्य में जैसा वर मिलना होगा वैसा ही मिलेगा; उसमें तू कुछ भी नहीं कर सकता।

ये बातें करके दोनों अपने-अपने घर को चले गये। मन्त्री के लड़के की उम्र कुछ अधिक थी। इसलिए उसको तो यह बात बड़ी उम्र तक याद रही। किन्तु राजकन्या की उम्र उस समय कुछ कम थी इसलिए थोड़े ही दिन में उसे उस बात का कुछ भी ख़याल न रहा। कुछ दिन के बाद दोनों बड़े हो गये।

राजा ने जब देखा कि चम्पककलिका अब विवाह के योग्य हो गई है तब उसने उसके विवाह का विचार किया। एक दिन राजा ने अपने प्रधान मन्त्री से कहा कि अब मेरी लड़की विवाह के योग्य हो गई है इसलिए कोई योग्य वर ढूँढ़ना चाहिए। यह काम मैं तुम्हारे ही अधीन करना चाहता हूँ इसलिए तुम्हीं कोई अच्छा राजकुमार ढूँढ़ो।

राजा की आज्ञा स्वीकार करके प्रधान मन्त्री अपने घर आया। उसने अपने घर में इस बात का ज़िक्र किया कि राजकन्या के लिए कोई वर ढूँढ़ना है। यह बात उसके पुत्र को भी मालूम हुई। वह पहली बात उसको अच्छी तरह याद थी। उसने अपने पिता से कहा कि आप बूढ़े हैं,

आप इधर-उधर घूमने के योग्य नहीं हैं। योग्य वर न मिलने से शायद दूर तक जाना पड़े तो आपको अधिक तकलीफ़ होगी। दूसरी बात यह कि यदि आप वर को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कहीं दूर निकल गये और राज-कार्य में कोई विघ्न-बाधा हुई तो उसको उस समय आपके बिना कौन सँभालेगा। राज-कार्य प्रधान है। इसको छोड़कर आपका जाना उचित नहीं मालूम होता। इस काम को मैं अच्छी तरह कर सकता हूँ। यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं वर ढूँढ़ लाऊँ।

राजा को तथा मन्त्री को चूड़ामणि की पहली बात की कुछ भी ख़बर न थी। उन दोनों में से एक भी इस बात को न जानता था कि राजपुत्री और मन्त्रिपुत्र के बीच बचपन में अनबन हो गई है जिसके कारण मन्त्री का लड़का ऐसी कार्रवाई करना चाहता है। मन्त्री ने अपने लड़के की बातें सुनकर कहा कि यदि तुम योग्य वर ढूँढ़ लाओ तो क्या कहना है। मैं राजा से पूछ लूँ। बिना राजा की आज्ञा के मैं तुमको नहीं भेज सकता। पुत्र से इस तरह कहकर प्रधान मन्त्री राजा के पास आज्ञा लेने के लिए चला गया। राजा ने प्रधान मन्त्री से कहा कि अगर तुम्हारा लड़का इस काम को अच्छी तरह कर सकता है तो उसी को भेज दो। आपका लड़का तथा मेरी लड़की दोनों बचपन में भाई-बहन की तरह एक साथ खेला करते थे। उन दोनों में अच्छा मेल था। आपका लड़का यह अच्छी तरह जानता ही है कि

राजकन्या के लिए वर कैसा होना चाहिए। वह अच्छा ही वर ढूँढ़कर लावेगा इसलिए उसी को जाने दो।

राजा की आज्ञा पाकर मन्त्री ने अपने लड़के को भेजने के लिए मार्ग का सामान तैयार कराया। सब सामान देकर कुछ नौकर साथ जाने के लिए भेजे। मन्त्री का लड़का वर ढूँढ़ने के लिए चल दिया। राजकन्या को भी यह मालूम हो गया कि चूड़ामणि वर ढूँढ़ने को जा रहा है। उसे बचपन की बात बिलकुल याद न थी।

चूड़ामणि अपने घर से निकलकर अनेक देश-देशान्तर में घूमता फिरा, पर जैसा वर उसको चाहिए था वैसा कहीं भी न मिला। एक दिन वह घूमता-घूमता जा रहा था कि रास्ते में एक वन मिला। उस वन में देखा कि एक लड़का एक वृक्ष पर चढ़ा हुआ है और जिस डाली पर बैठा है उसी को काट रहा है। चूड़ामणि ने देखकर कहा कि अरे लड़के! तू यह क्या कर रहा है, जिस डाली पर तू बैठा है उसी को काट रहा है! इस डाली के काटते ही तू भी ज़मीन पर आ गिरेगा।

उस लड़के ने कहा कि आप ठीक कहते हैं, पर मैं क्या करूँ। मैं इस वृक्ष पर चढ़ते तो चढ़ गया पर अब उतरना मुझे नहीं आता। इसलिए इस डाली को काट रहा हूँ कि कटकर वह डाली नीचे गिर पड़े तो मैं भी इसके साथ ज़मीन तक आ जाऊँ।

उस लड़के की बातें सुनकर चूड़ामणि ने अपने मन में निश्चय किया कि यह बिलकुल मूर्ख है। जैसा वर मैं ढूँढ़ने को निकला हूँ वैसा ही है। यह देखने में ख़ूबसूरत और बोलने में भो चतुर मालूम होता है, पर है बड़ा मूर्ख। मैंने हज़ारों मूर्ख देख डाले पर ऐसा मूर्ख एक भी न मिला था। राजकन्या के लिए यही अच्छा वर है।

अब चूड़ामणि ने अपने एक नौकर से कहा कि इस मनुष्य को वृक्ष से नीचे उतार लो। उसने उसको नीचे उतार लिया। उस मूर्ख लड़के से नौकर ने पूछा कि तू कौन है? किस वर्ण का लड़का है? क्या किया करता है? तेरी जीविका किस तरह होती है? उस लड़के ने धीरे से उत्तर दिया कि मैं एक ब्राह्मण का पुत्र हूँ। मैं लिखा-पढ़ा कुछ भी नहीं हूँ। जब मैं छोटा था तभी मेरे पिता-माता मुझको छोड़कर कहीं चले गये थे। अब मैं गाँव की गाय-भैंसें चराकर अपना गुज़ारा किया करता हूँ।

चूड़ामणि ने कहा कि यदि तू हमारे राजा की कन्या से अपना विवाह करना चाहे तो हमारे साथ चल। हम तेरी शादी करा देंगे। वह बेचारा मूर्ख तो था ही। उसने इस बात का बिलकुल विचार न किया कि कहाँ तो राजकन्या और कहाँ मैं! मेरी क्या योग्यता है कि मेरा विवाह राज-कन्या से हो सके। उसने कह दिया कि बहुत अच्छा, मैं राजकन्या से अपना विवाह कराने के लिए राज़ी हूँ।

अब चूड़ामणि ने उस अज्ञान बालक को नदी में स्नान कराया। अपने पास से अच्छे-अच्छे कपड़े देकर उसको पहनाये और कुछ आभूषण भी पहना दिये। मतलब यह कि उसको ऐसे सामान से सजा दिया जिससे मालूम हो कि यह किसी उच्च घराने का लड़का है। जब उसका ठाटबाट ठीक हो गया तब चूड़ामणि अपनी सवारी में बैठाकर चल दिया। वे सब बड़ी धूमधाम से उसे लेकर अपने नगर में पहुँचे। चूड़ामणि ने उस वर को एक मन्दिर में उतार दिया और उसके पास ऐसे विश्वासपात्र मनुष्य पहरे पर तैनात कर दिये जिससे उसका भाँड़ा न फूट सके। उस मूर्ख लड़के को चूड़ामणि ने अच्छी तरह समझा दिया था कि देखो जब तुमको कोई देखने आये तब बहुत न बोलना और देखनेवालों के सामने ख़ूब शान से रहना। उस मन्दिर में उसका अच्छा प्रबन्ध करके चूड़ामणि वहाँ से चल दिया।

अब नगर में इस बात की ख़बर फैल गई कि राजकन्या के लिए मगध देश का एक वर आ गया है। चूड़ामणि ने भी राजा से जाकर कहा कि महाराज! मैं वर की खोज में देश-देशान्तर में गया। बड़ी खोज के बाद मगध देश में एक वर आपकी कन्या के योग्य मिला है। मैं उसको अपने साथ ले आया हूँ।

नगरवासी बहुत से मनुष्य उसको देखने के लिए आये। उसके रूप-लावण्य को देखकर सबने उसे पसन्द किया।

अब राज्य की ओर से विवाह का सामान होने लगा। थोड़े ही दिनों में विवाह का सब सामान ठीक हो गया। नगर भर में आनन्द ही आनन्द होने लगा कि राजकन्या का विवाह है। राजा ने सब नगरवासियों को दावत दी और विवाह के सामान हुए तथा विधिपूर्वक विवाह किया गया।

एक दिन राजकन्या ने अपनी एक दासी को उस अज्ञान लड़के को देखने के लिए भेजा। दासी ने जाकर देखा कि महाराज सोने की बढ़िया खाट पर सो रहे हैं, वह लौट आई। फिर चम्पककलिका अपनी एक दासी के साथ उस मकान में गई जहाँ उसका पति ठहरा हुआ था। उसने जाकर देखा कि वह अब तक खाट पर सो रहे हैं। उसको सोता देखकर राजकुमारी ने कई ऐसे इशारे किये जिससे वह जाग जावे लेकिन वह न जागा। राजकन्या कई उपाय कर चुकी पर उसका पति अभी तक नहीं जागा। अब उसने समझ लिया कि वह निद्रा में अचेत हो रहा है। फिर एक बार हाथ पकड़कर हिलाया किन्तु फिर भी वह वैसे ही ज़ोर से ख़र्राटे लेता हुआ आनन्द से सोता रहा। राजकुमारी ने मन में समझ लिया कि इसको कभी ऐसा सुखपूर्वक सोना नहीं मिला। सोने के लिए इसको यहाँ जो चीजें मिली हैं ऐसी पहले कभी न मिली होंगी इसी लिए यह अचेत होकर सो रहा है। मालूम पड़ता है कि यह बड़े घर का नहीं है किन्तु किसी ग़रीब का लड़का है। यह विचार करते-करते चम्पक-

कलिका को वह बात याद आ गई जो बचपन में चूड़ामणि ने कही थी कि 'तेरे लिए ऐसा वर ढूँढ़ा जावेगा जो निपट मूर्ख एवं ग़रीब होगा।' इस तरह वह बहुत देर तक सोचती रही और मन में बड़ी दुखी हुई कि यह क्या हुआ। जब वह किसी तरह उठा ही नहीं, देर भी बहुत हो चुकी थी, तब राजकुमारी ने एक हाथ पकड़कर उसको बैठा दिया। वह ज्योंही जागा त्योंही उसने देखा कि सामने एक ऐसी राजकुमारी खड़ी है जो रूप-लावण्य में अद्वितीय है। उसके मुँह पर ऐसी शोभा, ऐसी कान्ति थी कि वैसी रूपवती कोई स्त्री उसने कभी देखी ही न थी। वह देखते ही डर गया और खाट पर से उतरकर नीचे खड़ा हो गया। वह हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे राजकुमारी! मुझे यह मालूम न था कि यह खाट आपकी है। आपकी खाट मैं जानता तो कभी न सोता। क्षमा कीजिए। आपके ही नौकरों ने मुझको इस पर सुला दिया था। इससे मैं इस पर सो गया। अपराध क्षमा हो।

अब राजकुमारी ने उसकी परीक्षा लेने के लिए उसको नाना प्रकार की चीजें दिखलाईं पर उसने किसी चीज़ की तरफ़ नज़र न की। किसी भी चीज़ के लिए यह न कहा कि यह अच्छी बनी है या बुरी। वह बेचारा क्या जानता था कि राजकुमारी की दिखलाई हुई चीजें बेशक़ीमती हैं। उसने कभी ऐसी चीजें देखी ही न थीं। वह तो जन्म भर गाय-भैंसें ही चराता रहा था। एक दिन अकस्मात् उसको राज-

कुमारी के साथ वन में जाने का मौक़ा हुआ। वहाँ चरती हुई गाय-भैंसों को देखकर वह बड़ा ख़ुश हुआ और कहने लगा कि देखो इन जानवरों के लिए यह कैसा अच्छा जङ्गल है, इनके चरने के लिए कैसा आराम है। उस मूर्ख की बातें सुनकर राजकुमारी को विश्वास हो गया कि यह राजकुमार नहीं किन्तु ग्वालिया मालूम होता है।

राजकुमारी को यह निश्चय हो गया कि यह कोई ग्वालिया है, बड़ा मूर्ख है, इसके साथ रहकर जन्म भर दुख भोगना पड़ेगा। इसको किसी उपाय से घर से निकाल दिया जाय तो कदाचित् यह कुछ पढ़-लिख जाय। यह सोच-विचारकर एक दिन राजकुमारी ने साफ़-साफ़ कह दिया कि तुम मेरे योग्य नहीं, तुम्हारे साथ मेरी ज़िन्दगी नहीं कट सकती। इसलिए तुमको मैं मरवा दूँगी। वह डरते हुए कहने लगा कि मैंने आपका कोई नुक़सान नहीं किया। आप मुझको मारने का क्यों विचार करती हैं। राजकुमारी ने कहा कि तू अत्यन्त मूर्ख है, तेरे साथ रहने की अपेक्षा यदि मैं विधवा होकर रहूँगी तो अच्छा है। मूर्ख मित्र के साथ रहना अच्छा नहीं, इससे तो यही अच्छा है कि मनुष्य बिना मित्र के रहे। इसी लिए मैं तुझे मारना चाहती हूँ।

मूर्ख ने पूछा—मैं मूर्ख क्यों हुआ सो तो बताइए ?

राजकन्या ने उत्तर दिया—तुमने पूर्व जन्म में अच्छे काम नहीं किये थे इसी से तुम मूर्ख रह गये।

उस मूर्ख ने पूछा—अब मैं क्या करूँ? मुझको कौन सा उपाय करना चाहिए जिससे मैं पढ़-लिख सकूँ ?

राजकन्या ने कहा—आजकल इस शहर के बाहर एक कालीचन्द्र नामक ऋषि आये हुए हैं उनके पास जाकर पूछो। वे तुमको उपाय बतला देंगे।

राजकन्या जब ऊपर का हाल कह चुकी तब फिर उसके मन में जलन पैदा हुई कि इस मूर्ख को मार देना ही अच्छा है। वह तलवार निकालकर उसको मारने के लिए तैयार हुई। उस समय उस मूर्ख ने हाथ जोड़कर कहा—मुझे मारो मत। आज से मैं इस नगर में कभी न आऊँगा। मैं आज ही इस नगर को छोड़कर बाहर चला जाऊँगा।

राजकन्या ने मन में विचार किया कि यह नगर छोड़ ही देगा और बड़ा पाप तो मनुष्य-हिंसा में ही है। फिर यह तो मेरा पति हो चुका है। इसके मारने में महापाप होगा। यह विचारकर उसने उसको छोड़ दिया। मारा नहीं।

मृत्यु से छुटकारा पाते ही मूर्ख ब्राह्मण वहाँ से चल दिया। वह ढूँढ़ता-ढूँढ़ता उसी कालीचन्द्र ऋषि के पास पहुँचा। उसने मन में सोचा कि मुझे धिक्कार है कि मैं ब्राह्मण होकर मूर्ख बना रहा; मूर्ख होने से ही राजकन्या ने मुझे अपने घर से निकाल दिया। यदि मैं कुछ भी पढ़ा-लिखा होता तो वह मुझको क्यों निकालती। यह सोचकर वह मुनि के पास जाकर खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर

कहने लगा—हे महाराज! मैं बड़ा मूर्ख हूँ, मैं कुछ भी पढ़ा-लिखा नहीं हूँ। मेरा विवाह एक राजकन्या से हुआ था। वह बहुत पढ़ी-लिखी है। उसने मुझको मूर्ख समझकर मारना चाहा था। वह मुझको अपने साथ किसी तरह भी रखने को राज़ी न हुई। जैसे-तैसे मैं वहाँ से भाग आया हूँ। अब आपके शरण में हूँ। आप किसी प्रकार मुझे पढ़ने का उपाय बतलाइए कि मैं क्या करूँ। मूर्ख रहना अच्छा नहीं।

उन्होंने देखकर उस मूर्ख से कहा—अरे! तू घबराता क्यों है! मैं तुझको बहुत जल्दी पढ़ा-लिखाकर विद्वान् बना दूँगा। तू धीरज धर, तू बड़ा विद्वान् बन जावेगा।

तब वह ऋषिराज के ही पास रहने लगा और विद्या के गूढ़ मर्म को सीखने लगा।

राजघराने से जब वह मूर्ख ब्राह्मण चला गया तब राजकन्या के चित्त में कुछ सन्तोष हुआ।

थोड़े दिन के बाद वह ब्राह्मण पढ़-लिखकर ऐसा विद्वान् हुआ जिसकी कीर्ति आज देश-देशान्तर में छाई हुई है। जब वह पूर्ण विद्वान् हो गया तब अपने घर पर आया और दर्वाजे पर आकर कहने लगा कि "कपाटावुद्घाटय"—किवाड़ खोलो। राजकुमारी उस समय किसी कार्य में संलग्न थी। आवाज़ सुनते ही समझ गई कि मेरा पति आया है; यह आवाज उसी की है। तब उसने भीतर से पूछा—"अस्ति

कश्चिद्वाग्विशेषः"—क्या तुम्हारी बातचीत में कुछ परिवर्तन हो गया है, क्या तुम कोई विद्या सीखकर आये हो ?

जब स्त्री-पुरुष दोनों की परस्पर बातचीत हुई तब चम्पक-कलिका को मालूम हो गया कि मेरा पति तो अद्वितीय विद्वान् होकर आया है। वह हाथ जोड़कर सामने खड़ी हुई और अपने अपराध की क्षमा चाहने लगी। उसने कहा—महाराज ! मेरे अपराध को क्षमा कीजिए। मैंने आपके साथ वह पाप किया है जो कोई भी स्त्री अपने पति के साथ नहीं कर सकती। अब मेरा इसी में निस्तार है कि आप मेरे अपराध को क्षमा कर दें। ब्राह्मण ने कहा—इसमें तेरा कोई अपराध नहीं, तूने मेरे जन्म को सार्थ कर दिया। यदि मेरे साथ तेरा कठोर बर्ताव न होता तो मैं जन्म भर मूर्ख ही बना रहता। तेरी ही कृपा से मैंने विद्या सीखी है। इसके लिए मैं तेरा आजन्म उपकार मानूँगा।

अन्त में वे दोनों स्त्री-पुरुष आनन्द के साथ अपने गृहस्थाश्रम को व्यतीत करने लगे। जब तक संसार में रहे—आनन्दपूर्वक अपने जीवन को बिताया।

विद्या पढ़कर घर आने पर ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से कहा था कि किवाड़ खोलो। उस समय जो वाक्य उसकी स्त्री ने कहा था उसका एक-एक शब्द लेकर उस ब्राह्मण ने तीन ऐसे काव्य बनाये हैं जिनका प्रचार देश-विदेश में आज तक हो रहा है। और जब तक पठन-पाठन का विचार बना रहेगा

तब तक कालिदास के ग्रन्थों की इज्ज़त बनी रहेगी। 'अस्ति' शब्द को लेकर "कुमारसम्भव" काव्य बनाया, जिसके पहले श्लोक में कविराज ने 'अस्ति' शब्द रक्खा है; 'कश्चित्' शब्द लेकर 'मेघदूत' बनाया जिसके प्रारम्भ के श्लोक में 'कश्चित्' शब्द रक्खा है और 'वाक्' शब्द लेकर कविराज ने महाकाव्य 'रघुवंश' रचा। रघुवंश का अनेक भाषाओं में अनुवाद हो गया है। आजकल कालिदास के काव्य-ग्रन्थों की बड़ी प्रशंसा है। वास्तव में कालिदास कविशिरोमणि थे। उन्होंने अपना नाम विद्या पढ़-लिखकर ही कालिदास रक्खा था।

राजा भोज को जब इनकी विद्वत्ता का हाल मालूम हुआ तब उसने इनको अपनी सभा में बुलवाया और इनसे बातचीत करके इतना प्रसन्न हुआ कि इनको बड़े आदर के साथ अपनी सभा का सर्वोपरि पण्डित मानकर रक्खा और दानमान से इनकी बड़ी प्रतिष्ठा की। राजा भोज कवि कालिदास के बराबर किसी कवि को न मानते थे। ये सदा इनको अपने साथ रखते और इनसे बातचीत करके प्रसन्न होते थे। कवि कालिदास के बराबर कवि होना मुश्किल है। इस समय तक इनके समान कोई कवि नहीं हुआ।

इति

बाल-सखा-पुस्तक-माला

नाम की एक सीरीज़ इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग से छपकर प्रकाशित होती है। इस पुस्तक-माला में अब तक २५ किताबें निकल चुकी हैं। इन पुस्तकों की भाषा ऐसी सरल है कि बालकों और स्त्रियों तक की समझ में बड़ी आसानी से आ जाती है। हिन्दी-पत्र-सम्पादकों ने इन पुस्तकों की बड़ी प्रशंसा की है। यही नहीं, इस 'माला' की कई किताबें सरकारी स्कूलों में भी जारी हो गई हैं। इन पुस्तकों के नाम मूल्य-सहित हम यहाँ लिखते हैं; जिन्हें ज़रूरत हो, वे नीचे लिखे पते से मँगा सकते हैं।